श्रीकृष्ण-संदेश
वन्दे जगद्गुरुम्
वर्ष १६
अङ्क १
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा

कृष्णाया वसुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

अनुक्रमणिका

श्रीकृष्ण-सन्देश, जनवरी १९८१

१. सन्देश-चिन्तन ३
२. गीता-जयन्ती महोत्सव तथा भागवत कथा ५
३. दूध की कमी और अच्छे साड़ों की आवश्यकता ७
४. गीतांजलि ९
५. स्वर्गका हाथी सयाना बन गया ११
६. बड़ा बनूँगा १७
७. अकारण कष्ट देने वाले भी निर्दोष १९
८. संस्मरण २१
९. तीन उपदेश २३
१०. परमात्मा २४

प्रभु-आवत

(श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र')

५९. महर्षि भृगु १२९
६०. देवर्षि १३१
६१. भगवान भास्कर १३३
६२. वैवस्वतमनु १३५
६३. महाराज दशरथ १३७
६४. देवी शारदा १३९
६५. भगवती धरा १४१
६६. भगवान शेष १४३

अमृतपुत्र

(श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र')

१. प्रस्तावना १
२. अपनी बात ६
३. ऐन्द्रियक जीवन ८
४. परिहास ११
५. पुनः परिहास १४
६. आशीर्वाद १८
७. शाप-सुधार २३
८. पुनः शाप २६
९. शापोंका विवेचन ३१

एक प्रतिका मूल्य : १/- वार्षिक शुल्क : १०/- आजीवन शुल्क : १५१/-

सम्पादक—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा संस्थानके लिए श्रीमनोहरलाल पाठक, द्वारा शारदा प्रिन्टर्स, मथुरामें मुद्रित करवाकर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान मथुरा २८१००१ से प्रकाशित।

वर्ष १६ | मथुरा श्रीकृष्ण सम्वत् ५२०६ जनवरी १९८१ | अङ्क-१

सन्देश चिन्तन

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।

गीता ८ २०

सामान्यार्थ—नित्य अव्यक्त प्रकृतिसे भी परे एक और सत्ता है जो सब प्राणि-पदार्थोंके नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होती. गीता ८-२०।।

विशेष—अब इस श्लोकमें उसी चेतनकी बात भगवान् स्पष्ट करते हैं । 'तस्मात् तु अन्यो भावः परः'—ब्रह्माके दिनके आरम्भमें जो भूतग्राम उत्पन्न हो जाते हैं और ब्रह्माकी रात्रि आने पर अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं, उन विवश भावों-भूतग्रामोंसे एक भाव पर—भिन्न है ।

अव्यक्तोऽव्यक्तात्—वह भी अव्यक्त है। लेकिन वह अव्यक्त प्रकृतिसे भी अव्यक्त है। उसे किसी भी शब्दके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

सनातनः—लेकिन अव्यक्त प्रकृतिके समान वह सत-असत्से भिन्न नहीं है। वह सनातन अर्थात् नित्य है। इसका अर्थ ही है कि वह सत् है। लेकिन सत् होनेपर भी वह अवाङ्मनसागोचर होनेसे अनिर्वचनीय है। मन, इन्द्रिय एवं वाणीकी उस तक पहुंच ही नहीं है।

यः सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।

सबके सब भूत—प्राणी और पदार्थ तो नाश हो रहे हैं। प्रलयके समय तो ये अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं; किन्तु जब तक दीखते हैं, तब तक भी नष्ट होते रहते हैं। कोई प्राणी ऐसा नहीं जिसका शरीर प्रत्येक क्षण बदल न रहा हो। सभी पदार्थ प्रतिक्षण ही परिवर्तित हो रहे हैं।

वस्तुतः जगतके सब पदार्थोंका प्रति क्षण जन्म और मृत्यु हो रही है। हमारे आपके शरीरमें लाख-लाख कण प्रति क्षण मर रहे हैं और दूसरे लाख-लाख कण प्रति क्षण बन रहे हैं। जन्म-मृत्यु, घटना-बढ़ना, बदलना और फिर भी बने रहना, ये ६ विकार सब पदार्थोंके साथ सदा लगे हैं।

इसमें भी बना रहना विचित्र भ्रम है। जैसे सरिताका जल बहता जा रहा है, किन्तु जलधाराके प्रवाहके कारण सरिता बनी है, ऐसे ही हमारे आपके शरीर भी असंख्य परमाणुओंकी धाराके द्वारा बनाया गया एक आकार मात्र हैं।

न विनश्यति—इन निरन्तर नाश होने वाले भूतग्राममें भी एक तत्त्व है जो नष्ट नहीं होता है।

हमारा-आपका शरीर कभी शिशु था, युवा हुआ, प्रौढ़ या वृद्ध हो गया; किन्तु हम-आपने कभी अनुभव किया अपने बदल जाने का? यह हमारा-आपका 'मैं' कभी बदलता नहीं। यह सब नाशवानोंमें रहता हुआ अविनाशी है।

मत पूछिये कि यह क्या है? कौन है? क्योंकि यह अव्यक्तसे भी अव्यक्त है। यह सनातन तो है; किन्तु अनिर्वचनीय है। यह साक्षात् अपरोक्ष है; क्योंकि आप किसी इन्द्रियसे इसका प्रत्यक्ष नहीं कर सकते; किन्तु यह परोक्ष-आड़में भी नहीं है। यही आपका अपना आपा है। यह आप स्वयं हो।। ८-२०।।

गीता-जयन्ती महोत्सव तथा भागवत कथा

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान (मथुरा) पर श्रीमद्भागवतकी पाक्षिक कथा परम श्रद्धेय श्रीकृष्णशंकरशास्त्रीजी महाराजने मार्गशीर्ष कृ० १० (२ दिसम्बर) से मार्गशीर्ष शु० ६ (१६ दिसम्बर) तक की। अत्यन्त भक्तिभावपूर्ण प्रवचन था। अनेक श्रद्धालु श्रोता मथुराके बाहरके भी पधारे थे।

गीता-जयन्ती

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (१८ दिसम्बर) को गीता जयन्तीका उत्सव प्रतिवर्षके समान उत्साह पूर्वक मनाया गया।

प्रातः सामुहिक गीता-पाठ हुआ। सायंकाल गीताके विषयपर सम्मान्य विद्वानों के प्रवचन हुये।

गीता-निबन्ध प्रतियोगिता

इस वर्ष इस प्रतियोगितामें प्रथम आये तीन निबन्धोंको पुरस्कृत किया गया। इन्हें पुरस्कार स्वरूप यहाँसे प्रकाशित-ग्रन्थ भेजे गये—

१—श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रा 'विनय' एम. ए. अनुसंधाता संस्कृत पालि विभाग काशी हि. वि. वि.।

२—श्रीरामभाऊ शास्त्री, गढ़ीपुरा, हरदा (म० प्र०)

३—श्रीगिरीशचन्द्र गुरुरानी शास्त्री, बेंगलोर

बाल प्रतियोगिता—

१—श्रीविजयबिहारी दुबे

२—श्रीरविकांतमोहन

गीता-निबन्ध प्रतियोगिता इस वर्षसे स्थगित कर दी गयी। क्योंकि केवल ८-१० प्रतियोगी ही प्रतिवर्ष भाग लेते हैं। इसमें आशाके अनुरूप विद्वानोंका सहयोग नहीं प्राप्त हुआ।

बाल-निबन्ध प्रतियोगिता तो इसलिए भी स्थगितकी गयी, क्योंकि इसमें दूसरोंके द्वारा लिखवाकर या लिखे जाकर बालकोंके नामसे निबन्ध भेजनेकी अवांछनीय प्रवृत्ति स्पष्ट दिखलायी पड़ी।

गीता-कंठाग्र-प्रतियोगिता

आगामी वर्ष गीता कंठाग्र प्रतियोगिता गीता जयन्ती ८ दिसम्बर सन् ८१ को होगी।

गीताका प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय अध्याय—प्रथम या प्रथम दो अथवा तीनों जिन्हें श्लोक संख्या सहित कंठ होंगे उन्हें ५०) से १००) तक पुरस्कार दिया जायगा।

प्रतियोगिता में सम्मिलित होनेवालेको अपने आगमनकी लिखित सूचना २५ नवम्बर तक भेज देनी चाहिए। उनके आवास तथा भोजन फलाहारकी उस दिन व्यवस्था रहेगी।

गीता-रामायण-पत्र व्यवहार विद्यालय

जिन्होंने प्रथम वर्षके पाठ पूरे कर लिये हैं, उनमें एक सज्जन उपस्थित थे उन्हें प्रमाण पत्र दिया गया। शेष प्रमाण पत्र डाकसे भेजे जा रहे हैं। द्वितीय वर्षके प्रमाण पत्र छपते ही भेजे जायगें। तृतीय वर्षके पाठ जिनके शुल्क आये हैं उन्हें भेजे जा रहे हैं।

—सम्पादक

आपका ही लाभ

'श्रीकृष्ण-सन्देश' का मूल्य बढ़ाया नहीं गया है। आप यदि विचार करके देखें तो दस रुपये वार्षिकमें इतनी सामग्री दूसरा कोई पत्र नहीं देता।

इसी वर्ष सन् ८१ में दो आध्यात्मिक उपन्यास श्रीकृष्ण-सन्देश के पाठकोंको पत्रमें पूरे मिल जायं, यह प्रयत्न है, उनमेंसे केवल 'अमृतपुत्र' ही पृथक पुस्तक रूपमें आठ रुपयेसे अधिकका होगा। 'पलक झपकते' भी लगभग पांच रुपयेका हो सकता है।

जो लोग सन् ८० के भी ग्राहक रहे हैं, उन्हें 'वे मिलेंगे' पूरा मिल चुका और अब 'प्रभु आवत' भी पूरा मिल जायगा। इस प्रकार 'श्रीकृष्ण सन्देश' वर्ष भरमें अठारह रुपयेसे अधिककी पुस्तकें ही दे रहा है और इसके अतिरिक्त गीता, लेखादि रहता ही है।

अतः अब भी समय है कि आप १५१) भेजकर आजीवन ग्राहक बन जायें। यदि आप वार्षिक शुल्क १०) भेज चुके हैं तो आपको १४१) ही भेजना है।

अपने मित्रों-परिचितोंको भी ग्राहक बनाकर यह सुयोग प्रदान करें।

—व्यवस्थापक

दूध की कमी और अच्छे साडों की आवश्यकता

[नित्यलीलालीन भाई जी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार]

आज हमारी गाय इतनी निर्बल है कि यह संख्यामें बहुत अधिक होने पर भी दुग्धोत्पादनमें बहुत ही पीछे है। आजकल प्रति मनुष्य औसत भारतवर्षमें लगभग ३ औंस यानी डेढ़ छटांक (किसी-किसीके मतमें ७ औंस) दूध मिलता होगा, जब कि न्यूजीलैण्ड ५६, आस्ट्रेलियामें ४५ इंगलैण्डमें और अमेरिकामें ३५ औंस मिलता है। शरीरकी संतोषजनक वृद्धि और स्वास्थ्य रक्षाके लिये कमसे कम १५ से ३० औंस तक दूध तो मिलना ही चाहिये। इसी दूधके अभावके कारण बच्चोंकी मृत्युसंख्या बहुत अधिक होती है। हमारे यहांकी गाय साल भरमें औसत ७५० पौंड दूध देती है। तथा दो ब्यानोंके बीचका अन्तर भी दूसरे देशोंकी अपेक्षा बहुत लम्बा होता है। अतएव नस्ल सुधारकी बड़ी आवश्यकता है। इसके लिये खुराक तो पूरी चाहिये है, पर उत्तम सांड़ोंकी भी बड़ी आवश्यकता है। हमारे यहां ही अनुमानतः जहाँ २५० अच्छे सांतानिक सांड़ोंकी आवश्यकता है, वहाँ केवल एक ही सांड़ है। जिसकी माँ बहुत दूधदेने वाली हो उसीसे उत्पन्न सांड़की संतान गौ अधिक दूधदेने वाली हो सकती है। सरकारी पंचवर्षीय योजनामें सांड़ तैयार करने के लिये ६०० केन्द्रीय ग्राम योजना तथा १२० सांड़ फार्म बनानेकी योजना की गयी है। यह योजना यदि सफल हुई तो प्रतिवर्ष ६ हजार सांड़ निकलेगें, पर गायोंकी संख्याको देखते यह संख्या बहुत ही कम है। विशेषज्ञोंके द्वारा ऐसे ही सांड़ तैयार कराये जांय जो स्थानीय नस्लोंके लिये लाभदायक हों और उनसे उन्हींके अनुकूल गायोंको बर्दानेकी व्यवस्था करायी जाए जिससे उनकी नस्ल वर्णसंकरी होकर बिगड़ न जाए।

गोचरभूमि तथा चारा-दाना

गायकी दुर्बलतामें चारे दानेकी कमी भी एक प्रधान कारण है। कहना नहीं होगा कि भारतवर्षमें पहले प्रचुर गोचरभूमि थी। अंग्रेजोंके जमानेमें उसका बड़ा ह्रास हो गया। इधर कारखानों तथा रेलके विस्तारसे जंगल तथा चारेकी ऊसर-जमीन रुकी जारही है। गौओंकी ओर वस्तुतः किसीका ध्यान नहीं है।

पाकिस्तान सहित भारतवर्षका क्षेत्रफल १५७१९६४ वर्गमील अर्थात् ११६२६९१६००० एकड़ भूमि है। इनमेंसे कुल २८६६५१७०५ एकड़ खेतीके काम में आती हैं। शेष ८७६२६७२७५ एकड़ जमीनमें आबादी (नगर, गांव सड़क रेल, तालाब आदि) हैं। ६३२५४७११ एकड़ भूमि ऊसर तथा १०३५७२ ३८ एकड़ जंगल है। विशेषज्ञोंका मत है कि चारेके लिये केवल ६४ (किसीके मतसे अधिक से अधिक ९) लाख एकड़ जमीनसे अधिक नहीं है। खेतोंके लिये अयोग्य भूमि में जो कुछ चारा अपने आप चौमासेमें पानीसे हो जाता है बस, उसी पर पशुओं को निर्भर रहना पड़ना है। असलमें चारा उपजाया ही नहीं जाता। लगभग २॥ सेरसे अधिक चारा (हरा-सूखा मिलकर औसत) कठिनतासे मिलता हैं। यह स्थिति है। उधर पाश्चात्य देशोंको देखिये—ग्रेटब्रिटेनमें कुल ७॥ करोड़ एकड़ भूमि है और २ करोड़ ३० लाख एकड़ जमीन स्थायी गोचरभूमिके लिये है। जर्मनीमें ६॥ करोड़ एकड़ जमीनमे खेती होती है और २ करोड़ १४ लाख एकड़ गोचर भूमि है। न्यूजीलैण्डमें ६ करोड़ ७० लाख एकड़ गोचर भूमि है। अमेरिकामें लगभग ६० करोड़ एकड़ गोचरभूमि होगी। वहाँ खास तौर पर बढ़िया घास चारा उपजाया जाता है। हमारे यहाँ पशुओंकी आवश्यकतासे २२ प्रतिशत चारा और ७२ प्रतिशत दाना कम मिलता है। इसलिये गोचरभूमिकी प्रचुरता और दानेकी व्यवस्था परमावश्यक हैं। हमारे यहाँ करोड़ों एकड़ जमीन व्यर्थ पड़ी है उसमें तरह-तरहके उपयोगी घास तथा चारा उपजाया जाय। चारेका ठीक उपयोग हो और बिनौले, खली आदि, का उत्पादन बढ़ाकर उनका उपयोग केवल पशुओंके लिये ही किया जाय तो इस स्थितिमें सुधार हो सकता है। इधर सरकार और जनताको विशेष ध्यान देना चाहिये।

—✱—

विद्या दान कीजिये

विद्यादान बहुत बड़ा दान है। 'श्रीकृष्ण-संदेश' में प्रार्थना की गयी थी 'श्रीकृष्ण शोधपीठ' के लिए ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिका प्रदान करनेकी।

श्रीओंकारमलजी पोद्दार (संबलपुर) ने अनेक पुरानी धार्मिक पत्र-पत्रिकाओंके बहुतसे अंक भेजनेकी तत्परता प्रदर्शित की है।

डा० बालचन्द्रिका पाठक विद्यावारिधि (एटा) ने एटासे निकलने वाले पत्र 'साधन' के पर्याप्त पुराने अंक प्रदान किये हैं।

'कल्याण' के प्रायः सब अंक शोधपीठमें हैं। अतः उसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओंके अंक शोधपीठको चाहिये।

धार्मिक पत्र-पत्रिकाओंके अतिरिक्त साहित्यिक पत्र पत्रिकाओंके पुराने अंक या फाइल भी उपयोगी है। क्योंकि उनमें भी समयपर गीता तथा श्रीकृष्ण सम्बन्धी सामग्री गयी है। अतः सुधा, माधुरी, सरस्वती, विशाल भारत जैसी पुरानी पत्रिकाओंके अंक भी आवश्यक हैं।

आप ग्रन्थ भी भेज सकते हैं; किन्तु ग्रन्थ या पत्र-पत्रिका जो भेजना चाहें तो कृपया उनकी एक सूची पहिले हमें भेज दें। उनमेंसे शोधपीठके लिए जो उपयोगी होगा, वह हम आपको भेजनेको लिए लिख देंगे।

—सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' श्रीकृष्णजन्मस्थान मथुरा-१२८१००१

गीतांजलि

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बँगला मूल

५

अन्तर मम विकसित करो
अन्तरतर हे।
निर्मल करो, उज्ज्वल करो,
सुन्दर करो हे।

जाग्रत करो, उद्यत करो,
निर्भय करो हे।
मंगल करो, निरलस निःसंशय करो हे।
अन्तर मम विकसित करो,
अन्तरतर हे।

युक्त करो हे सबार संगे,
मुक्त करो हे बन्ध,
संचार करो सकल कर्मे
शान्त तोमार छन्द।

चरणपद्मे मम चित निःस्पन्दित करो हे,
नन्दित करो, नन्दित करो,
नन्दित करो हे।
अन्तर मम बिकसित करो
अन्तरतर हे।

हिन्दी अनुवाद

५

अन्तर मम विकसित करो
मम अन्तरंग हे।
निर्मल करो, उज्ज्वल करो।
सुन्दर करो हे।

जाग्रत करो, उद्यत करो,
निर्भय करो हे।
मंगल करो, निरलस निःसंशय करो हे।
अन्तर मम विकसित करो।
मम अन्तरंग हे।

युक्त करो हे सबके संग,
मुक्त करो हे बन्ध,
संचार करो सब कर्मों में
शांत तुम्हारा छन्द।

चरण-कमलमें मम चित निःस्पन्दित करो हे,
नन्दत करो, नन्दित करो,
नन्दित करो हे।
अन्तर मम विकसित करो।
मम अन्तरङ्ग हे।

अनुवाद—माधवप्रसाद गोयनका

स्वर्ग का हाथी सयाना बन गया ?

[पण्डित श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, सद्विद्यालंकार]

[१]

'महाराजकी जय हो !' स्वर्गाधिपतिको नमःकार करते हुए महामात्रने पुकार की—'देवाधिदेव ! आज ऐरावत मदोन्मत्त बन गया है। प्रयत्न करने पर भी वशमें नहीं आता।'

'क्या कारण है इसका महामात्र ?' महाराज इन्द्रने कहा—'उसके आहार-पानीमें तो कोई कसर नहीं हुई ?'

'नहीं महाराज !' महामात्र बोला—'नित्यनियमके अनुसार आज भी उसे आहर-पानी दिया गया था, मगर उसने स्पर्श तक नहीं किया। उसका बहुमूल्य आहर ज्यों का त्यों पड़ा है, आप स्वयं पधार कर देख सकते हैं।'

'तो चलो, मैं स्वयं चल कर देखूँ ! क्या हो गया है उसे ?' कहकर स्वयं देवाधिपति उठे। उनके साथ अनेक अनुचर देवगण भी हस्तिशालामें चले। देखा—हाथी मदमें उन्मत्त होकर झूल रहा था। बहुमूल्य ओषधि, पाक-पक्वान्न इधर-उधर बिखरा पड़ा था। नजदीक आकर स्वयं इन्द्रने हाथीको पुचकारा। मगर यह क्या आश्चर्य ? अपने मालिक—देवराजको देख कर ऐरावत अत्यन्त आवेशमें आ गया ! उसका मद बेकाबू बन गया। 'भूतकालमें कभी ऐसा नहीं हुआ था,' एक अनुचर देवने कहा—'महाराज ! आप स्वयं उसके ऊपर सवारी करें, शायद यह अंकुशसे वशमें आ जावे !'

'ठीक बात है' कहकर इन्द्र सवार होने को तैयार हुए, मगर यह क्या ? हाथी अपना सिर हिलाकर मना कर रहा है ! महामात्रने भी उसको अंकुशमें लेनेके अनेक प्रयत्न किये, मगर व्यर्थ ! हाथी तो मस्त बन गया था। अनुचर लोग आश्चर्यमें पड़ गये। ऐरावत तो उत्पन्न ही इन्द्रके लिए हुआ है। भोग्य हाथी भोक्ताके अधिकारको इन्कार कैसे कर सकता है। उपस्थित सभी देवगण विचार कर रहे थे, अब क्या करना चाहिये ?

इतने ही समयमें अन्तरिक्षमें आवाज सुनायी दी—'नारायण'''नारायण' सभीने ऊँचे देखा, वीणापाणि नारदमुनि ब्रह्मलोकसे स्वयं आ रहे थे। इन्द्रादि देवोंने देवर्षिको वन्दन किया। इन्द्रके सामने हँसकर नारदने पूछा—'कहिये शतक्रतु इन्द्र

महाराज ! क्या बात है ? किस सोच विचारमें पड़े हैं आप सब लोग ? क्या यहाँ कोई कौतुक हुआ है ? या यह ऐरावत अस्वस्थ हो गया है?'

'हाँ महाराज ! ऐरावत अस्वस्थ हो गया है आज । मगर उसकी अस्वस्थता शारीरिक नहीं, मानसिक है ।' प्रणाम करते हुए इन्द्रने कहा—'आज ऐरावत मुझे सवारी करनेसे इन्कार कर रहा है, स्वर्गीय शिस्तपालनसे मुकर रहा है ।'

'शिस्तपालन ?·····'शब्दका पुनरुच्चारण करते हुए नारदजी हँस पड़े ।

'महात्मन् ! क्या इसमें भी कोई रहस्य है ?' इन्द्रराजने प्रश्न किया ।

'हाँ सुरपति !' नारदजी बोले—'प्रत्येक प्राणीके विनय-अविनय, शिस्त-अशिस्तका पालन एवं राग-द्वेषके मूलमें भी पूर्वजन्मका अनुसन्धान होता है । सामान्य मनुष्य इसे जाननेमें असमर्थ होता है ।'

'—तो महाराज !' इन्द्रने जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किया—'सर्वप्रथम आप इस रहस्यका उद्घाटन कीजिये ।'

'देवाधिराज !' नारदजी बोले—ऐरावतको एक पशु जाति-हाथीका शरीर भी कुछ पुण्यसे मिला है, वैसे ही तुम्हें यह इन्द्र पद भी पूर्वोपार्जित पुण्यसे ही मिला है । इन दोनोंमेंसे एक स्वामी बनता है, और एक सेवक बनता है, एक भोक्ता बनता है, दूसरा भोग्य बनता है । जब आपने इस कर्मका रहस्य जानना चाहा है तो मैं आपसे अवश्य कहूंगा, सुनिये—

[२]

पूर्वकालमें अवन्ती नगरीमें एक विद्वान् पण्डितजीका आगमन हुआ । उनका नाम था 'विश्वबन्धु' । पण्डितजी धर्मशास्त्र, वेद, पुराण आदिके प्रकाण्ड विद्वान् थे । उनके प्रवचनमें इतना माधुर्य था कि उनकी कथा सुनकर श्रोतागण मन्त्रमुग्ध बनकर झूमने लगते थे । एक विशाल मन्दिरके प्रांगणमें पण्डितजीका प्रवचन होने लगा । सारे नगरके आबाल वृद्ध पण्डित विश्वबन्धुके प्रवचनमें आने लगे । थोड़े ही दिनों में पण्डित विश्वबन्धुकी प्रशंसा नगरके कोने-कोने फैल गयी । स्वयं नगरका राजा भी कथामें आने लगा । राजाको भी पण्डितजीके प्रति अपार सम्मान हो गया ।

उसी नगरमें वीरवर्मा नामके एक साधुहृदय सद्गृहस्थ निवासकरते थे । वीरवर्मा धर्म नीति एवं सदाचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे । अपने नित्य कर्ममें एवं नाम-जपमें प्रवृत्त वीरवर्मा पण्डितजीके प्रवचनमें जानेका अवकाश नहीं पा रहे थे ।

एक दिन एकान्तमें एक मनुष्यने आकर पण्डितजीको कहा—'महाराज ! आपकी जय-ध्वनि सारे नगरमें गूँज उठी है, घर-घरमें आपके प्रवचन-माधुर्यकी प्रशंसा हो रही है·········'

'—क्यों नहीं····क्यों नहीं····' अपनी प्रशंशासे फूल कर पण्डितजी बोले—'शास्त्राभ्यास एवं सुमधुर स्वरके साथ सुन्दर कथाशैलीका त्रिवेणी संगम तो हर एक को आकर्षित करता है।'

'—किन्तु महाराज ! उस आदमीने कहा—'मैं यह कहना चाहता हूँ कि—जब तक आपकी कथामें वीरवर्मा उपस्थित न हो, तब तक आपका व्याख्यान कच्चा अथवा अपूर्ण माना जायगा।'

'—ऐसी बात है ?' पण्डितजी बोले—'तो मैं उसे आज्ञा करके अपने प्रवचनमें बुलाता हूँ। इस नगरमें ऐसा कोई नहीं, जो मेरी आज्ञाका उल्लंघन कर सके !'

दूसरे दिन पण्डितजीने अपने शिष्यसे कहलाया कि वह आज अवश्य प्रवचनमें आवे, परन्तु उस दिन वीरवर्माको व्रत होनेके कारण प्रवचनमें आनेका अवकाश नहीं मिल सका।

प्रवचन पूरा होनेके बाद पण्डितजी सोच ही रहे थे, उसी समय उस आदमीने आकर पण्डितजीसे कहा—आज भी वीरवर्मा नहीं आया न ! मैंने नहीं कहा था कि जब तक वीरवर्मा प्रवचनमें न आवे, तब तक आपका प्रवचन·····....'

'·········मैं समझता हूँ' पण्डितजीके हृदयमें अपना स्वमान-भंग दर्दकर रहा था, उन्होंने कहा—'उसमें कोई बड़ी बात नहीं है, मेरे कहलाने पर भी वह न आया, तो मैं भी उसे देख लूँगा'।

—दूसरे दिन व्याख्यान पूर्ण हुआ। उसी समय मुकाम पर आकर राजाने पण्डितजीको कहा—'महाराज ! मेरी प्रार्थना है कि कल आप भोजनके निमित्त मेरे राजमहलको पावन करें।'

'राजन् !' मौका देखकर पण्डितजी बोले—'आपके यहाँ आनेमें तो कोई हर्ज नहीं है, मगर मेरी एक शर्त है ! उस शर्तका पालन करनेके लिए आपको वचन देना होगा।'

राजाने विचार किया कि अधिक-से-अधिक पण्डितजी कोई मूल्यवान रत्न-सुवर्णादि या कुछ जमीन-जागीरकी याचना करेंगे। सुपात्रको दान करनेमें कोई हर्ज नहीं है। अतः उसने कहा 'मैं वचन देता हूं कि आपकी शर्तका यथावत् पालन होगा। आप निःसंकोच कहिये, क्या शर्त है आपकी ?'

'—तो सुनिये राजन् !'

पण्डित वि वबन्धु बोले— आपके नगरमें वीरवर्मा नामक एक सेठ रहता है। जब मेरी पालकी राजमहलके प्रांगणमें पहुँच जाय, उस समय उसे हाजिर रक्खा जाय, और प्रांगणसे लेकर भोजनालयपर्यन्त मैं उसके ऊपर सवारी करूँ और उसके बाद मैं भोजन करूँ, यही मेरी शर्त है।'

'परन्तु महाराज !' राजाने चौंककर प्रार्थना करते हुए कहा—'वीरवर्मा तो एक गृहस्थ साधु जीवन व्यतीत कर रहा है, और आपको पालकी द्वारा राजमहलमें पधारना है, फिर वीरवर्माके ऊपर सवारी करके आनेका आग्रह क्यों ? यदि आप आज्ञा करें तो मैं····'

'····नहीं राजन्, शर्त मेरी है, उसमें छूट-छाट देना मेरा काम नहीं है। अगर आपको यह बात पसन्द नहीं है तो आपके निमन्त्रणको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं तो हाथीके समान वीरवर्माके ऊपर सवारी करके ही भोजनालयमें आना चाहता हूं ?'

राजाने सोचा—'पण्डितजी 'निर्मानमोहा जितसंगदोषा····' इत्यादिका प्रवचन तो बहुत खूबीसे कर सकते हैं, मगर इन्हींको 'मान-मोह' का नशा चढ़ गया है। मगर, अब तो मैं वचनबद्ध हो चुका हूँ अतः पण्डितजीकी शर्तका पालन करना होगा।' उसने व्यथित हृदयसे वचन-पालन करने को स्वीकार किया।

—दूसरे दिन राजाकी आज्ञानुसार वीरवर्माको बुलाया गया। समयानुसार पण्डितजी पालकीमें बैठकर प्रांगणमें आये और साधु-चरित वीरवर्माकी पीटके ऊपर सवारी करके भोजनगृहमें पधारे। वीरवर्माने यह सब प्रेमसे सहन किया, उन्हें पण्डित जीके प्रति यत्किंचित भी रोष नहीं आया।

[३]

'—तो सुना आपने ?' नारदजी बोले—'मद, मत्सर एवं मानके त्रिदोषसे मरकर वही विश्वबन्धु पण्डित ऐरावत बनकर स्वर्गमें आये हैं। वस्तुतः विद्या, ज्ञान और धर्मसेवनके फलस्वरूप उन्हें ब्रह्मलोकमें जानेका अधिकार था। परन्तु इन्हीं त्रिदोषके कारण उनका अधिकार क्षीण होकर स्वर्गके संकुचित सुखमें परिणत होगया। अब वे हाथी जैसे पशुदेह में स्वर्गीय सुखका अनुभव कर रहे हैं।'

'····और समत्व एवं प्रभुपरायणता आदि सद्गुणोंके करण वीरवर्माको स्वर्गाधिपति इन्द्रका पद मिला है। आज ही अकस्मात् विश्वब धुके चित्तमें पूर्वजन्मके मदका आविर्भाव हुआ है, और इसी कारणसे यह ऐरावत इन्द्रके स्वामित्वको स्वीकार नहीं करता है।'

'किन्तु महाराज !' इन्द्रने प्रश्न किया—'यह महामात्रका शरीर····?'

'हां, ठीक याद किया आपने' नारदजी बोले—'यह महामात्र पूर्वका मत्सरयुक्त मानव है, जिसने पण्डितजी को वीरवर्माका अपमान करने को उकसाया था। प्रेरणा देनेके पापसे स्वर्ग के उत्तम सुख का अधिकारी यह जीव अब महामात्र बन कर कनिष्ट सुख भोग रहा है।'

'—यह प्राचीन उपाख्यान सुनाकर आपने हमलोगोंको पूर्वजन्मका ठीक स्मरण दिलाया, इन्द्रने प्रार्थना करते हुए कहा—'अब इस हाथीको शान्त एवं स्वस्थ बनानेके लिए क्या किया जाय ?'

'आप चिन्ता न करें देवाधिराज !' नारदजी बोले—'मैं अभी उसको समझा देता हूं' कहकर नारदजी ऐरावतके पास आये और बोले—'गजराज ऐरावत ! जिन दोषोंके परित्यागपूर्वक धर्मसेवन द्वारा मनुष्य सद्‌गतिको प्राप्त होता है, उन्हीं मान, मद और मत्सरादि दोषोंके कारण तुमने एक निर्दोष-सन्तहृदयी मनुष्य के ऊपर सवारी करके उसका मान-खण्डन किया है, इसी पापके कारण इस दिव्य लोकमें तुम्हें हाथी बनकर आना पड़ा है। पूर्वके विश्वबन्धु पण्डितजी महाराज ! अब तो—

न केवलं मनुष्येषु दैवं देवेऽपि बाधकम् ।
विश्वबन्धुः स्वय पापात्, स्वर्गे हस्तिपदं गतः ॥

—इस हस्तिशरीर द्वारा जो भी सुख-दुःखादि मिले, इन्हें निभानेमें ही तुम्हारा कल्याण है। अन्यथा यहांसे भी पतन होगा।'

—नारदजीके उपदेशसे स्वर्गका हाथी सयाना बन गया ! ※

जान बची बड़ी बात

'तुम लोग क्या कर रहे हो ?' एक मार्ग चलते किसान ने बहुत-से गाय चरानेवाले बच्चोंको इकट्ठे होकर कुछ हल्ला-गुल्ला करते देखकर पूछा।

'चूहा निकालते हैं।' वे बालक बड़े उत्साहमें थे। कई लाठियाँ लेकर इधर-उधर सावधान खड़े थे और तीन-चार एक मिट्टीकी गगरीमें पासके गड्ढेसे पानी लाकर एक बिलमें डाल रहे थे।

'इसमेंसे चूहा निकलेगा। उसे मारेंगे, इसी कल्पनामें वे मस्त थे। मरे चूहेका उन्हें क्या करना था।

चूहेने तुम्हारा कुछ बिगाड़ा तो है नहीं ?' किसानने कहा—'यहाँ न आस-पास खेतोंमें अन्न है, न कोई घर है। क्यों बेचारेके पीछे पड़े हो ? इस बिलमें चूहा न होकर सांप हुआ तो ?'

'साँपको भी मार देंगे।' बालक अपने जोशमें थे। उन्हें चूहा हो या साँप, उसे निकालना था बिलसे और मारना था। क्यों मारना था, यह कौन सोचे।

किसान चला गया। न चला जाता तो लड़के उसे चिढ़ाते या कौन जाने उसके ऊपर पानी ही फेंक देते।

बिलमें लड़के पानी डालते रहे। इधर-उधर लाठी लिये खड़े रहे। हल्ला मचाते रहे। अन्तमें एक बोला—'यह निकला !'

बिलमें से जरा-सा मुख दीखा था। लड़के झपट पड़े थे बिलकी ओर; किन्तु फिर एक साथ वे चीखे—'बाप रे !'

भयङ्कर काला नाग सर्र करता बिलसे निकला और फण फैलाकर खड़ा हो गया। बालक भागे जान लेकर। किसीकी लाठी छूटी, किसीका गमछा गिरा।

जान बची बड़ी बात। नागने दौड़ाकर किसीको काटा नहीं। लड़के स्वयं दूर भाग गये।

किसी अनजान बिलमें पानी डालने, लघुशंका करने या हाथ डालने की भूल तुम तो कभी नहीं करते ?

—卐—

बड़ा बनूँगा—

आज कन्हाईको धुन चढ़ी है—'मैं बड़ा बनूँगा।' आपको कोई इसका सीधा उपाय ज्ञात है ?

श्यामसुन्दर इसे तो सह सकता है कि बाबा, मैया, ताऊ, चाचा या दूसरे गोप इसे कह देते हैं—'अभी तू छोटा है।'

ताई, चाची और बूढ़ी गोपियाँ भी छोटा कह देती हैं, इसका भी बुरा नहीं लगता। दाऊदादासे, ऋषभसे,अर्जुनसे और विशालसे छोटा है, यह भी नापकरके इसने देख लिया है, किन्तु यह भी कोई बात है कि वरूथप, भद्र और श्रीदामा भी इसे छोटा कहदें। नहीं यह छोटा नहीं रहगा। बड़ा बनेगा अब।

'मैं बड़ा बनूँगा।' मैयासे यह खीझ रहा है—'तू मुझे बड़ा बना दे।'

तीन वर्ष का नन्हा कन्हाई। मैयाने स्नान कराके केशरकी खौर लगादी है। भालपर नेत्रोंमें काजल लगाते समय एक बिन्दु लगा दिया है। अलकोंमें मयूरपिच्छ सजा दिया है मुक्तामाला सजाकर। वक्षपर मोतियों की लड़ीके मध्यसे कौस्तुभ और श्रीवत्स झांकतेसे लगते हैं। अभी पटुका कन्धेपर नहीं है। करोंमें कंकण, भुजाओंमें अङ्गद, कानोंमें कुण्डल, कटिमें किंकिणी, चरणोंमें नूपुर हैं।

'तू बड़ा कैसे बनेगा ?' यह गोपी हँस रही है—'बड़ा तो उड़दका बनता है या मूँगका और दहीमें डुबाया जाता है। तू दहीकी बड़ी मटकी में डूबेगा ?'

'वह बड़ा नहीं।' श्यामने मस्तक हिलाया—'भद्र से श्रीदामसे बड़ा।'

'मैं तो स्वयं छोटी हूं। तेरी मांसे, ताईसे छोटी हूं।' मैया भी हँस रही है—'यह गोपी तो मुझसे भी छोटी है। मैं तुझे कैसे बड़ा बना सकती हूं।'

कन्हाई मैयासे तनिक हटकर खड़ा हो गया है। जो स्वयं छोटी है वह बड़ा नहीं बना सकती, यह बात तो समझमें आने की है; किन्तु मैया छोटी है ? किधरसे छोटी है ? बड़े ध्यानसे मैयाको ओर गोपीको भी देखने लगा है।

मैया बैठी है। गोपी भी बैठी है। कन्हाईको लगता है कि मैया सचमुच छोटी है। यह तो उससे भी छोटी दीखती है। तब ? तब मां इसे बड़ा बना देगी। मां रोहिणी तो बड़ी हैं ही।

'मां ! मैं बड़ा बनूँगा !' कन्हाई दौड़कर गया और मांके पैरोंसे लिपट गया। मां खड़ी हैं, अतः कन्हाईको बहुत बड़ी लगती हैं।

'हाँ, मेरा लाल खूब बड़ा बनेगा।' मां रोहिणीने अङ्कमें उठाना चाहा।

'नहीं, अभी बड़ा बना दो मुझे। दाऊदादा जैसा बड़ा।' दाऊदादाको मां रोहिणीने ही बड़ा बनाया होगा, यह कन्हाई सोचने लगा है।

'तू अपने दाऊदादाके बराबर बनेगा या उससे बड़ा ?' मां ने हँसकर पूछा।

'उहुं !' कन्हाईने सिर हिला दिया। दाऊदादासे बड़ा बननेकी बात अच्छी नहीं लगी। दाऊदादाके बराबर भी बनना ठीक नहीं लगा। दाऊदादा बड़ा रहे यही अच्छा लगता है; किन्तु—'श्रीदामसे बड़ा बनूँगा।'

'अच्छा; मांने स्वीकार कर लिया—'उससे बड़ा तो तू है। आज बछड़े चराकर आ तो तुझे समझा दूँगी।'

'वह नहीं मानता।' कन्हाईका हठ कुछ ढीला पड़ा है—'तू मुझे बड़ा बना दे।'

'दादा ! बड़ा कैसे बनते हैं ?' बछड़ोंके साथ वनमें जाते ही श्याम आज दूसरे खेल छोड़कर अपने बड़े भ ईके समीप आखड़ा हुआ।

'मैं बताऊँ ?' देवप्रस्थने कहा।

'तू तो स्वयं छोटा है न मुझ ा भी छोटा।' कन्हाईने देवप्रस्थकी ओर देखा।

'छोटा हूं तो क्या होगया।' देवप्रस्थ दौड़कर कहींसे एक दाना चना ले आया-'देख, मैं इसे बड़ा बनाता हूं।'

श्याम आश्चर्यसे देवप्रस्थको घूरकर देखने लगा है। मब इसे 'देव' कहते हैं तो क्या यह सचमुच देवता है ? यह इ न दानेको बड़ा कैसे बना देगा ?

'तू इसे देखता रह !' देवप्रस्थने एक नारिकेलके पात्रमें पानी भरा और उसमें दाना डाल दिया—'यह थोड़ी देरमें बड़ा हो जायगा। मेरी मैया वृषभोंको खिलानेके लिए प्रतिदिन ऐसे बहुत चनोंको बड़ा बनाती है।'

'तेरी मैयाको बड़ा बनाना आता है ? कन्हाईने देवका हाथ पकड़ा—'तुझे क्यों नहीं बनाती ?'

'मैं बड़ा नहीं बनूँगा।' देवप्रस्थकी बड़े बननेमें कोई रुचि ही नहीं है—'बड़े बननेके लिए देरतक पानीमें डूबे रहना पड़ता है और मैया तो थोड़ी देर भी मुझे स्नान नहीं करने देती।'

'यह बड़ा तो हो रहा है।' कन्हाईने थोड़ी देरमें ही चनेको जलसे f काला; किन्तु लगा कि द ना तनिक बड़ा हो गया है।

'मैं खूब देरतक पानीमें बैठा रहूंगा।' श्यामको पानीमें बैठे रहनेमें कोई बाधा नहीं है। इसे तो चाहे जैसे बड़ा बनना है। अब वनसे लौटते ही देवप्रस्थके साथ उनके घर जायगा और पानी में बैठकर बड़ा बनेगा।

यह दूसरी बात है कि इस नन्हे नन्दनन्दनको घर लौटने तक यह बात स्मरण भी रहेगी या नहीं; किन्तु क्या आप विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यही धुन लिए यह वामन नहीं बना था और झटपट विराट् नहीं बन गया था ?

—卐—

अकारण कष्ट देने वाला भी निर्दोष ?

श्री 'हृदयस्थ'

(श्रीरामनारायणजी 'हृदयस्थ' एक साधारण लेखापाल थे; किन्तु उसे त्यागकर आध्यात्मिक साधन एवं प्रचारमें उन्होंने अपना पूरा जीवन उत्सर्ग कर दिया। 'मारुति-मंडल' ग्वालियरके ग्राम क्षेत्रोंमें उन्होंने स्थापित किया और मासिक पत्र 'मारुति-संजीवन' निकाला। मुझसे तो उनका दीर्घकालीन परिचय एवं स्नेह रहा है। उन दिवंगतके प्रति श्रद्धांजलिके साथ उनका यह लेख दे रहा हूं। 'श्रीहृदयस्थ' स्वयं अपने लेखमें वर्णित विचारोंके मूर्तरूप थे।) —सम्पादक

हमारी सुख सुविधाओंमें बाधक, हमारे विचारके प्रतिकूल अथवा हमारी मान्यताओंके विरुद्ध आचरण करनेवाला मानव ही नहीं प्राणी मात्रपर भी हमें क्रोध-आजाता है। यह स्वाभाविक भी है। इस नियमके प्रतिवाद स्वरूप किन्हीं सज्जनोंका स्वभाव हो तो उन्हें ब्रह्मवेत्ता, परमहंस या देवि कोटिमें ही माना जायगा। कहते हैं देवि कोटिमें कष्टका अनुभव नहीं होता। तब क्रोधकी उत्पत्तिका प्रश्न ही नहीं। यहाँ प्रश्न एक दूसरे जीव द्वारा एक दूसरे जीवको कष्ट पहुँचाने या वैसी चेष्टा करनेका है।

भारतीय शास्त्रों, आचार्यों एवं तत्व ज्ञानी साधकोंने एक स्वरसे घोषित किया है—कि जीव ईश्वरका ही अंश है। अंश अपने अंश अथवा अंशीके प्रति कोई प्रति-कल्पना करे यह कैसे सम्भव हो सकता है। वस्तुतः उनमें कोई भेद नहीं होता। यदि कहें कि जीव माया विमोहित होता है तो जीव मात्र सभी माया विमोहित हैं। इन सबकी चेष्टाएं एक दूसरेसे भिन्न होनी है। यों भले ही जीव प्रभुको भूल गया हो, पर प्रभुकी इच्छाके समक्ष माया प्रभावहीन है।

आस्तिक समुदायकी इस समस्याका समाधान श्रुति शास्त्रोंमें उपलब्ध है इतना ही नहीं, सर्वसुलभ श्रीमद्भगवतगीता और रामचरितमानसमें भी प्राप्त है। यहाँ संक्षेपतः उसपर प्रकाश डालनेका प्रयास किया गया। प्रथम वेदनें माता गायत्री को ही लीजिये। पाठक जानते हैं कि इस महामंत्रमें निम्नाङ्कित २४ अक्षर हैं। प्रणव और व्याहृतियोंके साथ उच्चारण होना बात पृथक है।

'तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

उपरोक्त अक्षरोंमें आठ-आठके समूहसे बनने वाले तीन पदोंके कारण गायत्रीको त्रिपदा कहा माना जाता है। जिसका अर्थ मनीषियों द्वारा इस प्रकार मिलता है। यथा—

तत् यह सब विश्व उस ब्रह्म द्वारा सवितु प्रभावित एवं प्रकाशित है। और वह वरेण्यं सर्वश्रेष्ठ वरणीय भर्ग (तेजोमय) देवस्य देवका धीमहि ध्यान करते हैं धियोयोन: प्रचोदयात् जो हमारी बुद्धिको प्रेरित करता है।

द्वितीय—श्रीमद भगवदगीता में देखिये।

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनं। गीता अध्याय २।४७

निमित्तमात्रं भव सव्य साचिन्॥ गीता अध्याय ११। ३३

उपरोक्त वचन भी प्राणी द्वारा किये गये कर्मोंकी प्रमुखता सिद्ध करते हैं।

तृतीय—रामचरितमानसने तो विषयको अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान शंकरजी द्वारा पारवतीजीसे इस प्रकार कथनका उल्लेख किया है।

उमा दारु योषित की नाई। सबहिं नचावत राम गुसाईं॥

अवश्य ही उपरोक्त सन्दर्भित प्रमाणोंसे यह तथ्य निकलता है कि हमारे सुख-दुख हानि-लाभ जय-पराजय आदि पुण्य ही नहीं, जीवन और मृत्युका समायोजन भी उस अदृश्य सत्ता द्वारा ही होता है। हाँ! इस सुव्यवस्थाके लिए उस नियामक सत्ता द्वारा अधिक मानसिक या भावापन्न सभी कार्योंका निरीक्षण सतत अनिवार्य है। अतः प्राणी मात्रके हृदयमें उस ब्रह्म भर्ग रूप देवका निवास प्रत्यक्ष प्रमाणित है। कारण वेद अनादि कालीन और अपौरुषेय ग्रन्थ है।

श्रीमद्भगवदगीतामें भी बीसियों बार उस विश्व नियन्ता द्वारा विश्व शासित और ओत प्रोत प्रमाणित करते हुए प्राणी मात्रके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे रहकर उसके शुभाशुभ कार्योंका साक्ष्य रूपसे रखना दण्ड विधान एवं अन्तमें स्पष्ट ही कर दिया है—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रा रूढ़ानि मायया॥ गीता अध्याय १८।६१

यही कारण है कि उस व्यवस्थामें सत्य, प्रेम और न्यायके अतिरिक्त किसी प्रकार भूल होनेका सन्देह नहीं किया जा सकता है। तभी तो मानसकारने इतनी दृढ़ताके साथ घोषित किया है कि—

कोउ न काहु सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

अथवा

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

ज्ञातव्य है कि जीव अपने कर्म विकर्म एवं सुकर्मोंको सदैव स्मरण रख पानेमें समर्थ नहीं है। विशेष कर शरीर या योनि परिवर्तन होने पर तो विमन कर्मकेन्द्र कृत्योंका स्मरण रह पाना असम्भव ही सा है। तभी तो यह बहुश्रुति प्रमाणित है कि

"ईश्वरकी इच्छाके बिना संसारमें पत्ता भी नही हिलता।"

—●—

संस्मरण—

आपके भी जीवनमें अच्छे संस्मरण होंगे। आपके अपने और आपके परिचितोंके भी। इनमें अवश्य कुछ होंगे जिनसे दूसरोंको भी प्रेरणा मिल सकती है। अपनी प्रशंसा—आत्मप्रचारको छोड़कर यदि आप ऐसे संक्षिप्त संस्मरण भेजेंगे तो उन्हें आवश्यक सुधार करके दिया जायगा। लेकिन केवल प्रेषकका नाम छपेगा—पता नहीं। संस्मरण कैसे होने चाहिये यह आप समझ लें, इस उद्देश्यसे मैं ही प्रारम्भ कर रहा हूँ—सं०

भयसे भागिये मत सामना कीजिये

१—उन दिनों जन्मभूमिके ग्रामसे ६ मील (लगभग ९ किलोमीटर) दूर पढ़ता था; क्योंकि इससे निकट माध्यमिक शाला नहीं थी। छात्रावासमें रहता था। शनिवारको घर आनेकी छुट्टी होती थी। सोमवारको सीधा-सामान लेकर जाना पड़ता था।

वर्षाके दिन थे; किन्तु आकाश साफ था। पाठशालासे शनिवारको देरसे छुट्टी हुई। लगभग मीलभर चलनेमें सूर्यास्त होगया। संयोग ऐसा कि उस दिन मेरे गाँवके दूसरे सहपाठी आये नहीं थे। मैं अकेला था। आयु लगभग १४ वर्ष होगी। क्योंकि स्काउटिंगमें था, हाथमें लाठी थी।

मार्गमें कोई विशेष बात नहीं हुई। अपने गाँवके पड़ोसमें पहुंचकर मार्गके दोनों ओर, कुछ दूरी तक गन्नेके ऊँचे खेत खड़े थे। बीचमें पतली पगदण्डी। अँधेरीरात। कहीं कीचड़में पैर पड़ा था, अतः जूते मैंने हाथमें ले रखे थे।

अचानक लगा कि मार्ग रोककर कोई कालीवस्तु बैठी है। दोनों ओर गन्नेके खेत। मैं लगभग खेतोंकी आधी चौड़ाई पारकर आया था। सुन रखा था कि वहीं-कहीं बहुत बड़ा सांप रहता है। लगा कि वही रास्ते पर बैठा है मनमें आया—'पीछे लौटूं तो खदेड़ कर काटेगा।' बगलमें दोनों ओर सघन गन्ना। 'अब ?' भय से ठिठककर खड़ा रह गया। मनने कहा—अब यह काटे बिना तो छोड़ेगा नहीं। अतः इसे एक लाठी भरपूर पहिले मार दो। सम्भव है इतना घायल हो जाय कि इससे दौड़ा न जासके।'

मैंने हाथके जूते गन्नोंपर फेंके; किन्तु लाठी दोनों हाथोंमें पकड़े हँसता रह गया। वह तो मेड़पर बैठा सियार था। जूते गिरनेका शब्द होते ही गन्नेके खेत में घुस गया था।

२--रात वह भी अँधेरी थी। पाठशालासे फिर देरसे चल सका था और उस दिन भी अकेला था। दिन होलीके बादके थे। वार्षिक परीक्षा होने ही वाली थी।

अपना गाँव आधा मील रह गया था। मार्गसे बायें लगभग ढाई सौ गजपर एक पोखरके किनारे आगका भभका फूटा और बन्द हो गया। अब उधर ध्यान गया। आग मिनट दो मिनटपर जल उठती और तुरन्त बुझ जाती थी।

सुन रखा था कि वहीं-कहीं कोई बड़ा प्रेत रहता है और प्रेत ऐसी आग जलाते हैं। लेकिन पिताजी जो तब दिवंगत हो चुके थे, भगवती दुर्गाके उपासक थे। वे आसपास दूर तक प्रेत-बाधा दूर करने बुलाये जाते थे। उनका सीधा तरीका था-रोगीको जमकर पीटना। दो-तीन छड़ियाँ पीटते तोड़ देना साधारण बात थी।

कहते थे--प्रेतका ढोंग करने वाले ही नहीं, सचमुचके प्रेत भी मेरे बुलाये जानेकी बात सुनकर आधे तो भाग ही जाते हैं। उनमें मेरे हाथकी मार खयें न भी हों तो उनके संगी-साथी तो होंगे। वे उन्हें सावधान कर देते होंगे।'

मुझे भय नहीं लगा। क्रोध आया कि ऐसे पिताके पुत्रको कोई प्रेत डरानेका साहस करता है। मैंने पुकारा—'आग कौन जलाता है? भाग जाओ, नहीं तो मैं लाठीसे मारूँगा।'

आग जलना नहीं बन्द हुई तो मैं लाठी सम्हाले बढ़ा और एक लाठी वहाँ जो काली वस्तु थी, उसपर धमक दी। लाठी लगनेसे आग भड़की तो दीख गया कि वह कटे ताड़का बचा भाग था। उसपर किसीने आग धरदी थी। आग जलते-जलते खोखला बनाकर कुछ नीचे चली गयी थी और बार-बार भड़क रही थी।

—卐—

तीन उपदेश

एक लड़का घरसे अकेले यात्रापर जाने लगा तो बूढ़ी दादीने कहा—'बेटा ! वृक्षके नीचे मत सोना। सुनसानमें मत सोना। अनजान पानीके भीतर मत घुसना।'

लड़का घरसे चल पड़ा। पहलेही दिन दोपहर हुई तो उसे भूख लगी। एक कुए पर उसने रस्सीमें लोटा बांधा पानी निकालकर घरसे लायी रोटियाँ खायीं जल पीया। धूप तेज थी, अत: पासके पेड़के नीचे कपड़ा बिछाकर लेट गया।

लड़केको दादीकी बात याद थी; किन्तु दोपहरमें पेड़के नीचे न सोये, तो क्या धूपमें सोये ? वह थका था, नींद लग गयी। अचानक वृक्षपर एक कौआ कहींसे हड्डी-का टुकड़ा लेकर आ बैठा। हड्डी कौयेकी चोंचसे छूटी और लड़केके सिरपर गिरी। लड़का चौंककर जागा। सिरसे खून बह रहा था।

लड़केको दादीकी बात पर अब भरोसा हो गया था, किन्तु दो दिन पीछे उसे शामको कोई गाँव नहीं मिला। वह थक चुका था चलते-चलते। चांदनी रात थी। खूब खुला मैदान था। लड़केने मैदानमें ही कपड़ा बिछाकर लम्बी तानी। उसे पासके नालेमें पानी मिल गया था।

रातमें लड़केकी नाक पर कोई ठण्डी वस्तु लगी। वह एकदम कूदकर खड़ा हो गया। एक छोटा भेड़िया उसके पास खड़ा था। भेड़िया बड़ा होता तो लड़केकी जान जाती, किन्तु भेड़िया छोटा था। वह लड़केके उठते ही भाग खड़ा हुआ।

लड़केकी यात्रा चलती रही। अब उसने दादीकी बातों पर चलनेका पक्का निश्चय कर लिया था। कई दिन बाद वह एक छोटे जंगलके मार्गसे जा रहा था। एक नदी मिली। लड़केने कपड़े उतारे और स्नान करने पानीमें घुसा। पानीमें थोड़ी दूर जाते ही उसे दादीकी तीसरी बात स्मरण हो आयी। वह झटपट पानीसे बाहर आ गया।

लड़का पानीसे बाहर पहुँचा ही था कि वहाँ पानीमें एक घड़ियाल उछला। लेकिन अब तो लड़का सूखेमें पहुंच चुका था। घड़ियाल उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। हानि तो उसकी होती है जो बड़ोंके आदेशको नहीं मानता।

परमात्मा

अनु.—श्रीरामलाल

रातके नीले आसमानके
चमकते सितारे परमात्माकी ज्योति
बिखेरते हैं।
हरे-हरे लम्बे पेड़ोंके कोमल
पल्लव चञ्चल पवनका आलिङ्गन कर
परमात्माके सङ्गीतमें विभोर हैं।
मैं फुदकती गोरैयाकी चहकती
स्वर-लहरी सुनाता हूं;
मधु-मक्खी चारों ओर
मधुरिमा उढ़ेल रही हैं;
फूल खिल-खिलकर मनोरम
सुगन्धका दान कर रहे हैं;
शीतल हवा बह रही है;
रविकी किरणें बड़ी रमणीय हैं;
बरसातकी सुषमा तो और भी मादक है;
ये सब-के-सब परमात्मासे
परिचित कराते हैं, ये संकेत करते हैं—
परमात्मा केवल एक हैं एक ही हैं।
और आदमी अपनी अनेक-अनेक
योजनाओंमें लगे हैं, वे तो
अपने जीवनसे यही प्रकट करते हैं—
कि परमात्मा अनेक हैं,—
हमारे अनेक काम अनेक परमात्मा ही करते है;
एक नहीं, अनेक।
अब पता चला कि केवल आदमी ही
इतनी अधिक समझ रखते हैं
कि उनकी बातसे लोग भ्रमित जाते हैं।
परमात्मा अनेक नहीं, केवल एक है।

रचयिता : जे० सिग० पालसन
[सौजन्य : 'यूनिटी' अमरीका]

प्रभु आवत

(गताङ्क से आगे)

५६. महर्षि भृगु—

'मैंने त्रिदेवोंकी परीक्षा ली थी। भगवान विष्णुका वह शील, वे मेरे पदाघातका चिह्न अपने वक्षस्थलपर धारण करते हैं।' तपोलोक ही नहीं जनलोकके भी महत्तम एकत्र हो गये थे सत्यलोकमें और उनके मध्य अपार तेजा ब्रह्मपुत्र महर्षि भृगु कह रहे थे— 'श्रीनारायण अंश हैं श्रीरघुनाथके और वे परात्पर प्रभु अंशी धरापर अवतीर्ण होकर अपने वक्षपर भृगुलता धारण करते हैं। भृगुकी क्षुद्रता, उन मर्यादापुरुषोत्तमने मेरे अपराधको भी धन्य किया।'

'आपके जामाता भी तो हैं वे!' एक स्वर आया। माँ भगवती लक्ष्मीने अपने एक अवतरणमें महर्षि भृगुको पिता बनाया है। भगवान शेषशायी महर्षिके जामाता हैं और श्रीजनक नन्दिनीकी अंशभूता ही तो हैं रमा।

'वे निखिलेश्वरी' महर्षिके लोचनोंसे वर्षा होने लगी—'किन्तु जब दृष्टि उनपर जाती है, भृगुमें सदा वात्सल्य ही उमड़ता है। यह सत्य है कि सब जानकर भी श्रीरघुनाथको 'वत्सरामभद्र' कहनेमें जो उल्लास प्राप्त होता है इस हृदयको·····।'

काँप-काँप उठते रहे हैं महर्षिके कर उस क्षणसे, जबसे दशग्रीवने श्रीजनकात्मजाका हरण किया। पञ्चवटीकी उस निष्ठुर घटनाके क्षणमें ही भगवान लोकस्रष्टाने अपने अतुल तपः शक्ति सम्पन्न पुत्रको सम्हाल न लिया होता, भगवान शङ्कर तकको शाप देते जिसके पद कम्पित नहीं हुए, स्रष्टाके वरदान रक्षाकर लेते रावणकी महर्षि भृगुके शापसे? 'वत्स! तू जानता है, अधम नैकषेय श्रीजानकीके सम्मुख तक नहीं जा सकता। वे तो अग्नि-निवास कर रही हैं। यह छाया सीताका हरण, श्रीरामके अतुल यशमें व्याघात बनना तुझे रुचिकर होगा?' भगवान ब्रह्माकी यह वाणी सफल हुई थी। महर्षिके कर कमण्डलुकी ओर बढ़ते रुक गये थे; किन्तु वे रह-रहकर काँप उठते थे।

छाया सीता, निखिलेश्वरीकी अंश भूता और अंश भूता ही तो है रमा भी उनकी। महर्षिको लगता था, छाया सीता अधिक आत्मीया, अत्यधिक वात्सल्य भाजना हैं उनकी और उनके कर काँप उठते थे, 'किन्तु रामभद्रका सुयश? नहीं, दशग्रीवको शाप दग्ध नहीं ही किया जा सकता।'

आज श्रीरामके शरोंने दशग्रीवके खण्ड फेंक दिये धरापर और गाम्भीर्यके स्वरूप महर्षि तत्काल पुकार उठे थे—'वत्स, रामभद्रकी की जय।'

अब श्रीरघुनाथ अयोध्याकी भूमिपर उतरनेवाले हैं। उनका राज्याभिषेक होगा वहाँ। महर्षि भृगुको लगता है, उनके आत्मीयका ही अभिषेक है। उस समय कौशलके नवीन सम्राटको समस्त दिव्यर्षि वृन्दका आशीर्वाद प्राप्त होना ही चाहिए। अलक्ष्य आशीर्वाद नहीं, प्रत्यक्ष रहकर सम्राटके समस्तकपर हाथ-रखकर दिया गया आशीर्वाद और महर्षिने स्वयं सबको आमन्त्रित किया है।

'हम सब स्वयं अत्यन्त उत्कण्ठित हैं।' एक ही अभिप्राय है सबका—'अयोध्याके गगनसे श्रीराम-भरतकी भेंट देखनेकी लालसा जिस हृदयमें मचल न पड़ती हो, वज्र हृदय होगा वह। राज्याभिषेकके समारोहमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य, उसे तो तापसोंके परम गुरु भवानीनाथ भी छोड़ नहीं सकते थे।' 'आपका अनुगमन करके आज हमारी समस्त साधना सफल होती है।'

'हम महर्षि वशिष्ठके अतिथि होंगे, जब वे राजसदनसे लौट आवेंगे अपने आश्रम।' श्रीरघुनाथ यात्रा-श्रान्त होंगे और अवधके प्रत्येक प्राण आतुर हैं उनसे मिलनेके लिए। इस अवसर पर नभसे उनका दर्शन ही यथेष्ट होना चाहिए। उनके स्वजनोंके मिलन एवं विश्राममें व्याघात करनेकी बात सोची ही नहीं जा सकती। अपनी उत्कण्ठा चाहे जितनी प्रबल हो, उसे अवरुद्ध रखना होगा अभी।

'आपके उपहारोंके ही हम दर्शन करलें इस समय।' एक ऋषिकुमारने उत्कण्ठा व्यक्त की। तपः पूत अक्षय ज्योति अकल्पनीय शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यालङ्कार, दिव्य आभरण सुरोंकी कल्पना भी स्पर्श न कर सके जिन्हें वे अतुलनीय अम्बर एवं नित्य अम्लान सुमन-माल्य, महर्षि भृगुकी तपः शक्तिने पता नहीं कितने उपकरण प्रस्तुत किये हैं। अनन्तः अयोध्या वे रिक्त-हस्त तो नहीं जायँगे।

'ब्राह्मणका परमोपहार उसका आशीर्वाद।' महर्षिने सामग्री सम्मुख करके भी उसमें उल्लास नहीं दिखाया—'जिनके भ्रूभङ्ग कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि प्रलय करते हैं, उन्हें कोई कङ्गाल ब्राह्मण उपहार क्या दे सकता है?'

६०. देवर्षि—

'आप तो पुष्पकके साथ यात्रा कर करते थे ?' चारों कुमारोमें-से सनन्दनजीने कहा—'पुष्पकसे भी यात्रा करनेमें कोई बाधा नहीं थी।'

नित्य पथिक देवर्षि लङ्कासे लौटे थे। दशग्रीवके दारुण समरके प्रत्यक्ष द्रष्टा थे वे और संग्राम विजयी श्रीराघवेन्द्रका प्रथम जय-घोष उनके ही स्वरने किया था। उनकी वीणाके स्वरोंने लङ्काके सुर-शत्रुको समर शय्या देनेवाले उन दूर्वादल श्याम, श्रम-सीकर शोभित दाशरथिका स्तवन किया और देवर्षि ब्रह्मलोक आ गये, किन्तु उन्हें कहीं स्थिर रहना आता कहाँ है और जबसे श्रीरामने धराको सार्थक किया है, घूम फिर कर देवर्षि उनके आस-पास पहुँचते ही रहते हैं। अब उन्हें अयोध्या पहुँचनेकी त्वरा है।

'पुष्पकमें स्थिर बैठना नारदके स्वभावके अनुकूल नहीं है।' देवर्षि अपने इन अग्रजोंको अतिशय सम्मान देते हैं। गुरुकी भाँति इनका अर्चन-वन्दन करते हैं। अत्यन्त विनम्रता पूर्वक मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रार्थना की—'पुष्पकके साथ प्रस्थान करता तो निश्चय अधिक उल्लसित होता, किन्तु मर्यादापुरुषोत्तम परम संकोचशील हैं। उन्हें संकुचित करना किसीको प्रिय नहीं हो सकता और श्रीचरणोंमें संग्राम सम्वाद भी सूचित करने थे।'

आत्माराम, आप्तकाम, नित्यतृप्त, मायासे पार पहुँचे, पूर्वजोंके भी पूर्वज, किन्तु सदा पाँच वर्षकी अवस्थाके शिशु बने रहनेवाले चतुःकुमारोंको किसी युद्ध-समाचार जाननेका कुतूहल ? आशंका व्यर्थ है। श्रीरघुनाथके चरितामृतके जो रसज्ञ हैं, कहाँ मिलेगा इन कुमारोंसे महान् रसज्ञ और वह समर-सम्वाद, श्रीरामचरितका वह उत्कर्ष सुननेको वे उत्कर्ण न हों, दूसरा कौन होगा ?

'धन्य हैं देवर्षि !' सनातनजीका सहज उल्लास व्यक्त हुआ—'नेत्रोंकी परम सफलता इनके सम्मुख ही मूर्त हुई और इतनी सार्थक वाणी तो देवी वीणापाणिने भी प्राप्त नहीं की।'

'किन्तु इस बार आपको एकाकी यात्रा नहीं करने दी जा सकती।' सनकजी आसनसे उठ खड़े हुए—'इस आनन्दाम्बुधिके अवगाहनमें आपको और भी सहचरोंका संग प्राप्त होना है। यह संग असङ्गताकी अपेक्षा अधिक उत्तम सिद्ध होगा।'

'आप सब चले रहे हैं ?' देवर्षिने कोई आश्चर्य व्यक्त नहीं किया। इस अवसर पर न चलनेका निश्चय कोई करे, आश्चर्यकी बात तभी हो सकती थी। 'गगनसे ही श्रीभरतलालका अपने अग्रजसे मिलन देखनेकी इच्छा थी मेरी। महाराजाधिराजके सम्मुख तो राज्याभिषेकके अनन्तर उपस्थित होना चाहता था।

'हम इस बार आपके अनुगत हैं।' सनत्कुमारजीने अत्यन्त श्रद्धाभरित स्वरमें कहा—'आप अधिक परिचित हैं अयोध्या तथा उसकी परिस्थितिसे एवं उस दिव्य धराकी प्रकृतिसे भी।'

'श्रीरघुनाथसे अपरिचय किसका और जिनके वे हृदय सर्वस्व हैं तथा जो उनके हृदय-धन हैं, उनका अपरिचय ?' देवर्षिका स्वर आर्द्र बना—'किन्तु गुरुजन शिशुओंका जो स्नेह सत्कार करते हैं, श्रीचरणोंमें सदा यह सहज स्नेह सुलभ रहा है।'

'अयोध्याकी राजसभामें जब श्रीरघुनाथ विदेह नन्दिनीके साथ सिंहासनासीन होंगे' सनत्कुमारजी ही कह रहे थे—'उनकी अर्चाका सौभाग्य प्राप्त हो नहीं सकता हमें। वे मर्यादापुरुषोत्तम, वहाँ तो उनकी अर्चा स्वीकार करनी होगी। चित्त श्रीविदेह कुमारीके पाटलारुण पादपद्मोंमें लगा भले रहे, उनके सुकुमार कर जल धारा डालेंगे और उनके आराध्यको अपने पाद प्रक्षालनसे रोका जा नहीं सकता।'

'अर्चाका सुअवसर आज है।' देवर्षिने बताया, 'नभसे सुमन वर्षा करनेमें हमें कोई रोक नहीं सकता।'

'सुर-पादपके सुमन सफल हों जायँ आज।' चल पड़े थे चारों दिग्वास नित्य शिशु देवर्षिके साथ। उन्हें स्वर्गके नन्दन काननसे कुछ सुमन भी तो लेने हैं।

'इतनी सेवाका सौभाग्य यदि स्वीकृत हो सके' कानन-रक्षकने कर बद्ध प्रार्थनाकी—'श्रीचरण स्वयं सुमन चयनका श्रम स्वीकार करना चाहेंगे ? सेवकको सेवाका सौभाग्य नहीं मिलेगा ? यदि अवधके गगनपर पुष्प-प्रस्तुत करनेकी अनुमति प्राप्त हो जाय"""।

सुरेन्द्र नहीं हैं। इन त्रिभुन-वन्दनीयोंका समुचित स्वागत इस समय सम्भव है न हो सके, सेवकके मनमें पता नहीं क्या-क्या है. किन्तु ; यहाँ किसे अवसर है। अयोध्याके आकाशमें पहुंचनेकी त्वरा, पुष्प वहाँ प्रस्तुत मिलेंगे, इससे उत्तम व्यवस्था क्या हो सकती है ?

—★—

६१. भगवान भास्कर--

'उस वंशका वंशधर होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ मुझे जिसमें अवतीर्ण होना परात्पर परम पुरुषको प्रिय प्रतीत हुआ। भगवान आदित्यको अवकाश कहाँ कि वे कहीं स्थिर रहकर किसीसे कोई विचार विनिमय या बात चीत कर सकें। उनके सारथि अरुणको अपने अश्वोंको रोकना नहीं आता, आता भी होता, अश्व ही रुकना कहाँ जानते हैं। यह तो रथकी शोभा है कि उस पर अग्रिम स्थानमें सूत आसीन है; किन्तु हाथ-पैरकी अंगुलियोंसे रहित सूतसे वास्तविक सारथ्य अश्व-नियन्त्रणकी आशा आप कैसे कर सकते हैं ?

अनाधार अम्बरमें आदित्यका ज्योति रथ, उसके उज्ज्वल प्रकाश पुञ्ज अश्व उस रथको अनन्तकालसे एक निश्चित मार्गपर जो वृत्तप्राय है समान वेगसे लिये चल रहे हैं। शान्त स्थिर मात्र रहना है सारथी एवं रथीको।*

आज स्तुति करनेवाले ऋषिगोंको, नृत्य करते साथ चलनेवाली अप्सराको, गुण-गायक गन्धर्वराजको ही नहीं, बालखिल्य ऋषियोंको भी दिवानाथने अनुरोध पूर्वक अवकाश दे दिया था। रथको ठेलनेवाले राक्षस एवं उसकी सुरक्षापर नियत नाग आग्रह करनेपर भी गये नहीं थे, अन्यथा कहा उनसे भी गया था—'अयोध्याका महोत्सव आप सब भी देख लें आज।'

'अपने स्वामीके साथ ही हम उसे देखेंगे।' उनका उत्तर स्वाभाविक था और स्वीकृत होगया था। अरुणजी रथसे उतरना ही नहीं जानते। वे अपनी उत्पत्तिके पश्चात् सीधे जो आकर रथके सूतासनपर बैठे सो स्थिर बैठे हैं। लेकिन आज नृत्य, गीत, स्तवनका कोलाहल रथके साथ न होनेपर भी न सूतको और न सारथिको ही कुछ अटपटा लगता है। उनके अन्तरका उल्लास, उन्हें तो पूरा ब्रह्माण्ड आनन्दपूरमें उन्मज्जित होता प्रतीत होता है।

---

*आजके ज्योतिर्विद भी मानते हैं कि सूर्य स्थिर नहीं हैं। वे भी अपनी धुरी पर घूमते हुये सम्पूर्ण सौर मण्डलके साथ किसी अज्ञात महासूर्यकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। सूर्य स्थिर हैं, यह बात केवल पृथ्वीकी अपेक्षासे कही जाती है। सूर्यकी रश्मियाँ ही उनके अश्व एवं रथ हैं और अरुणको तो नित्य प्रभातमें आप देखते हैं। यह जो सूर्य-मण्डल दीखता है आपको उसके अधिष्ठाता देवता सूर्यकी बात यहाँ कहीं जा रही है।

'ऋतुएँ दशाननकी इच्छानुसार परिवर्तित होती थीं और वह भी एक ही समय अत्यन्त सीमित स्थानोंपर।' कोई उपालम्भ या रोष स्वरमें नहीं था—'हम कहाँ कितना आतप प्रदान करें, इसमें स्वाधीन नहीं थे। लङ्काधिपके भ्रू भङ्गका हमें निरन्तर ध्यान रखना था।'

'लगभग मन्वन्तर व्यापिनी यह पराधीनता' अरुणने तनिक पीछे मुख करके अपने रथीकी ओर देखा—'आज वह समाप्त होगयी। मेरे अनुज जिन चतुर्बाहु नवजलधर सुन्दरका वहन करते हैं, वे गरुड़ध्वज अंश हैं श्रीराघवेन्द्रके।'

'वत्स रामभद्र!' अत्यन्त आह्लाद पूरित था दिवस्पतिका स्वर—'अरुण! सृष्टि नियन्ताके कर अमङ्गलका सृजन नहीं किया करते। अभ्यास अनुशासन रहित होकर सुपक्व नहीं हुआ करता। उस अनुशासनमें पराधीनताके अनुभवका क्लेश, अपनी अज्ञताके अतिरिक्त वह और क्या है? दशग्रीव सृष्टिके परम सञ्चालकका एक विधान था। अनुशासन दिया उसने और अभ्यास पुष्ट होगया, परिपक्व होगया हमारा।'

'देव!' अरुणके नेत्रोंमें प्रश्न आया, आश्चर्य आया और पता नहीं क्या आया। स्पष्ट था कि वे अपने आरोहीका तात्पर्य समझ नहीं सके थे।

'दशग्रीवके हम कृतज्ञ हैं अरुण!' भगवान आदित्य उसी आह्लाद पूरित स्वरमें कहते गये—'यह ठीक है कि वत्स श्रीरामकी श्रद्धा प्राप्त है मुझे। वे मर्यादापुरुषोत्तम, उन्हें सुरोंपर रोष कभी नहीं आवेगा, अपराध बन जानेपर भी नहीं, किन्तु वे सर्वेश्वर हैं और भक्तवत्सल भी हैं। भक्तापराध सह लेना उनकी भी महनशीलताकी सीमासे परे है और वे अब भू-मण्डलके एकछत्र अधिपति होने जारहे है।'

'सचमुच हम कृतज्ञ हैं नैकषेय दशाननके देव!' अरुणके स्वरमें भी उल्लास आया—'उसके अनुशासनने, भयने हमें अभ्यास करा दिया कि व्यक्तियोंकी इच्छा एवं सुविधाके अनुसार ऋतुओं तथा तापका नियन्त्रण हम कैसे रख सकते हैं। अयोध्य-नाथकी प्रजाकी सेवाका सौभाग्य अब हमारा स्वत्व है।'

'आज आपके अश्व शिथिल पद हो रहे हैं।' स्मित आया भगवान भास्करके अधरों पर।

'अयोध्या समीप आ रही है, देव।' अरुणके नेत्र धराकी ओर देखने लगे थे—'कुमार भरत अपने नन्दि-ग्रामके उटजसे बाहर आ चुके हैं और पुष्पक गगनसे मन्दगति धराकी ओर चल पड़ा है।'

आगे जो दृश्य था, शब्द ही नहीं, संकल्प एवं शरीरकी सुधि भी डूब गयी उसके गाम्भीर्यमें।

—×—

६२. वैवस्वतमनु—

'मानव-सन्तति परम्पराकी सुरक्षाका कार्य सृष्टि कर्ताने दे रखा है मुझे।' जिनके पदका स्थायित्व लगभग ७२ चतुर्युगी है और जो वर्तमान मन्वन्तरके मनु है (वर्तमान मन्वन्तरके मनु, क्योंकि मनु तो एक पद है, भले यह देवत्व जैसा पद हो) वे कह रहे थे अपने पुत्र इक्ष्वाकुसे—'अपने मन्वन्तरके प्रारम्भसे ही मुझे दशग्रीवके दर्पका अनुभव हुआ। लोक पितामहने उसे वरदान दे रखा था। उसका अंकुश स्वीकार करनेके अतिरिक्त उपाय नहीं था।'

'आपपर उसका अंकुश ?' इक्ष्वाकुने साश्चर्य पूछा। क्योंकि मनुका कार्य ऐसा है कि किसी प्राणीसे उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं।

'जन संख्याकी कहाँ वृद्धि आवश्यक है और कहाँ उसपर नियन्त्रण रहना चाहिए, यह बात राक्षसराजकी दृष्टिमें थी और वह जानता था कि इसका प्रेरणा-सूत्र मनुके करोंमें रहता है। यों मनुकी शक्ति सीमासे वह परिचित था और इसीलिए उसने कभी प्रताड़ित करना आवश्यक नहीं माना—'किन्तु नैकषेय बढ़ते गये तथा पुण्य प्राण जनोंकी संख्या सीमित बनी रही, यह सत्य तो जगतके सम्मुख था ही।'

'समाप्त हो गयी वह रात्रिचरोंकी अतिरिक्त वृद्धि।' इक्ष्वाकुके स्वरोंमें परम सन्तोष था—'समाप्त कर दी श्रीरामने आपपर अंकुशकी वह भावना।'

'वे निखिल ब्रह्माण्ड नायक—मनु आज धन्य हैं।'

'धन्य है, यह इक्ष्वाकु और उसका वंश।' कण्ठ भर गया मनुके समर्थ सुतका—'वे जब गुरुजनोंको प्रणाम करते हैं, अपने गोत्रका परिचय देते अपनेको ऐक्ष्वाकु कहते हैं। इतना गौरव दिया उन्होंने.......।'

'लोक उन्हें राघव कहता हैं। रघुनाथ हैं वे तात।' दिव्यलोकसे महाराज रघुने आकर मनु एवं इक्ष्वाकुके पदोंमें प्रणाम किया—'सर्वाधिक धन्य किया उन्होंने इस जनको। वे इस रघुके ही नाथ हैं।'

'मर्यादापुरुषोत्तम हैं वे वत्स !' मनुने अपने सुयोग्य वंश प्रवर्तकके मस्तकपर अपना दक्षिण हस्त रखा—'तुम्हारे वंशधरोंके स्वामी होनेसे उन्हें रघुनाथ या राघवेन्द्र कहा जाता है। केवल इतनी व्याख्या वे स्वीकार कर सकते हैं।'

'हम आज इसीसे अयोध्याकी भूमिपर उतर नहीं सकते। उन्हें अतिशय संकोच होगा।'

'धन्य हो गयी अयोध्या ! कृत-कृत्य होगये उसके जन । सफल हो गया उसे राजधानी बनानेका हमारा श्रम । आज पूर्णत्व प्राप्त हुआ उसे । पूर्ण आज उसके अङ्कमें आ रहा है ।' मनु जैसे समाधि भाषामें बोलने लगे हों—'वह नित्यपूर्ण उसके सिंहासन पर आसीन होगा । अयोध्याका अधीश्वर, वही तो उसका शाश्वत अधीश्वर है ।'

'हम गगनसे देखेंगे श्रीराम भरतका मिलन एवं रामभद्रका राज्याभिषेक ।' इक्ष्वाकुका स्वर भी प्रेमार्द्र था—'कुमार भरतका तप, अयोध्याका नरेश अपनी उत्तरवयमें सदा तपस्वी रहा ; किन्तु अपने यौवनमें कैकेयी कुमारका तप ?' महर्षिगण भी उनके तपकी श्लाघा ही कर सकते हैं, श्रीरामके प्रेमसे परिप्लुत वह भावना-प्राण दिव्य-तप·······अयोध्या विश्वकी ऐश्वर्य भूमि थी और भरतने उसके उपकण्ठको पावन तपोभूमि बना दिया ।'

'अयोध्याका राजकुमार, वल्कल वसन, जटा मुकुट, घोर तप, आर्य-नरेशको इन सबसे परिचय करना पड़ता है । प्रिय है यह परिचय उसे, किन्तु वानप्रस्थका वह तप गार्हस्थ्यके प्रारम्भमें ही, भरतके भाव स्निग्ध तपकी तुलना वानप्रस्थके तपसे कैसे की जा सकती है ।'

'पुष्पक अयोध्याकी ओर प्रस्थान कर चुका है ।' रघुने ही सावधान किया, अन्यथा यह गोष्ठी तो भरतके स्नेह स्मरणमें ही आत्म-विस्मृत हो चुकी थी । 'जटा-मुकुटधारी दो नव जलधर-सुन्दर कुमारोंका मिलन समारोह ।'

'वात्सल्य प्रेमके दो अनन्त अपार उत्तुङ्ग आलोड़न लिये महासमुद्रोंका यह सम्मिलन विश्व प्रथम देखेगा आज ।' वाणी शब्द नहीं पा रही थी । शरीर शिथिल हुआ जा रहा था—'हमारे नेत्र धन्य बनें ।'

पुलक पूरित गात, गद्‌गद् कण्ठ, साश्रु-नयन, स्वेदाम्बुपूर तन, स्नेह-सिक्त रोम-रोम, वे परम-पूजनीय पूर्वज, उनका आशीर्वाद शब्दकी कहाँ अपेक्षा करता है । उनका स्नेह साकार अयोध्या नहीं पहुंच गया, यह कैसे कहेगा कोई ।

—·|·—

६३. महाराज दशरथ--

'मेरा पाप भी पुण्य बना लिया श्रीरामने।' लङ्काकी रणभूमिमें दशग्रीव-जयी त्रिभुवन-स्तुत अपने नव-दूर्वादल-श्याम सुतकी शोभा महाराजने महेन्द्रके साथ देखी थी। देवराज अनुरोध न भी करते, कम उत्सुकता थी महाराजके मानसमें। उस रक्ताक्त भूमिमें धनुषकी ज्या उतारकर वाम हस्तसे उसे भूमिसे टेके, स्थिर, शान्त, सुप्रसन्न श्रीराम। स्वेद सीकरोंके साथ उनके श्याम श्रीअङ्गपर शत्रुके रक्तके यत्र-तत्र कण, वह दिव्य छवि क्या भूलने योग्य है।

'महाराज! आपका परम पुण्य सुरोंके संकटको समाप्त करके यहाँ साकार अवस्थित है।' सुरेन्द्रने कहा था संग्राम-भूमि सम्मुख आते ही। उस समय कण्ठ असमर्थ था कुछ कहनेमें। अवश हो रहे थे महाराज स्नेहके उमड़ते प्रवाहके कारण।

'मेरा पुण्य, स्त्रीजित दशरथका पुण्य? यह पुण्य कि इसने श्रीरामसे शीलनिधि पुत्रको स्वत्वच्युत करके वन भेज दिया?' महाराजके मानसका यह शूल स्वर्ग आकर भी कहाँ जाता है—'सुरोंका, त्रिभुवनका संकट समाप्त हो गया आज। श्रीरामने उसे समाप्त कर दिया। दशरथका अपराध ही विश्वके लिए वरदान बन गया।'

'पुत्रने पिताके पापको पुण्य बना दिया। राम अपनोंके अपराधको सुकृतमें परिवर्तित करनेके सदासे अभ्यासी हैं।' महाराजका मानस आज आनन्दका क्रीड़ाङ्गण बना है। वे क्षण-क्षण विह्वल होते हैं—'पुत्रोंने दशरथके सभी अपकृतोंको सुकृत बना दिया। श्रीराम और भरत, मेरा भरत, उस सुकुमारने अपना सुर सुन्दर शरीर शुष्क कर दिया तपमें। अग्रजका स्वत्व, पिता भूल कर गये हों, भरतसे प्रमाद कहाँ सम्भव था। कैकेयीकी कुक्षिसे यह जो दिव्य ज्योति आविर्भूत हुई।'

'कैकेयी, किसी क्षुद्र कुण्ठाकी आखेट बनी वह भाग्यहीना। आजके उल्लासमें भी उसका स्वत्व नहीं।' आज महाराजके चित्तमें किसीके प्रति क्षोभ नहीं है। क्षमा करनेका प्रश्न कबका समाप्त हो चुका। आज तो वे करुणापूर्ण हो उठे हैं—'उसके हृदयमें कम उमङ्ग है? किन्तु उस उल्लासको यदि वह व्यक्त करे, कैसे करे! कहाँसे साहस पावे?'

'श्रीराम सर्वाधिक सम्मान करते हैं, करेंगे अपनी उस विमाताका; किन्तु भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न? कोई आशा नहीं कि भरत उसे क्षमा करदें। श्रीरामकी

मातृ भक्ति, उनका शील। कैकेयीका क्लेश अब उसके जीवनका अङ्ग बन गया और उसका अयश-अक्षय हो गया उस भाग्यहीनाका।'

'देवि कौशल्याका मूक तप सार्थक हुआ। उन तपोमयीका धैर्य।' महाराज आज सुराधिपके साथ नहीं जा सके थे। अमरावतीमें वे इस समय एकाकी थे। सुरेन्द्रने अनुरोध किया था; किन्तु अपनी भावधारामें अन्तर्लीन महाराजने सुना ही नहीं। उनके आनन्दमें व्याघात बनना कोई कैसे स्वीकार करता।

'भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सुमन्त्र।' आज महाराजके मानसमें एक-एक मूर्तियाँ आ रही थीं। उनकी अपूर्व धैर्यमयी पुत्र वधुएँ, अयोध्याके जन, श्रीरामके सखा—अश्व, पक्षी, पता नहीं क्या-क्या उन्हें स्मरण आ रहा है और प्रत्येक स्मृति उन्हें आत्म-विस्मृत कर देती है। प्रत्येककी महानता, प्रत्येककी भाव प्रवणता उन्हें विभोर कर देती है।

'महेन्द्र ठीक कह रहे थे। श्रीरामका भरतसे मिलन—त्रिभुवनने ऐसा अभूत पूर्व दृश्य नहीं देखा, आगे भी नहीं देखेगा।' सहसा महाराज चौंके, 'इन नेत्रोंको भी शीतल होना चाहिए। दशरथको अपनी भूलका वास्तविक परिमार्जन देखकर शीतल करना चाहिए हृदयको।'

अमरावती संकल्प लोक है। इच्छा करते ही यान उपस्थित होगया। अयोध्या पहुंचनेका प्रश्न ही नहीं। वहाँ अब उपस्थित संकोचकी सृष्टि करेगी। गगनमें भी दूरसे देखना है उस राम-भरत मिलनको। इतनी दूरसे जहाँसे सुरोंका संसर्ग भी व्याघात न बने। पुष्पक अब अयोध्याके आकाशमें पहुंच चुका है। महाराजके यानको पर्याप्त ऊपर रहकर उसके आरोहीको देखते रहना है।

६५. देवी शारदा—

'सुरोंका सङ्कट समाप्त होगया। मेरी अपकृति उपकृति बनी। निखिलेश्वरने मेरे कौटिल्यको सेवाके रूपमें ग्रहण किया; किन्तु' श्वेत पद्मासना, श्वेतवस्त्रा; हिमोज्वलाङ्गी, हंसवाहिनी, भगवती वीणापाणिका नित्योत्फुल्ल श्रीमुख इधर पर्याप्त समयसे खिन्न था और आज भी उसपर पूर्णोल्लास नहीं था। उनकी वीणाने इधर रसराजके स्थानपर करुण रससे एकात्मकता प्राप्त करली थी। उसके स्वर दिशाओंको लास्य मग्ना नहीं करते थे, वहाँ द्रवीभाव उत्पन्न होता था, किन्तु आज जो अनन्त आनन्द उमड़ पड़ा था चारों ओर, भगवतीकी वीणा उससे असंस्पृश्य रह जाय, आज तो यह अपराध बन जायगा।

'सरस्वती सुकृतकी अधिदेवी कही जाती है। मेरा आशीर्वाद, मेरा स्पर्श यशोज्वल करता आया है सदासे सबको।' कमल दलायत लोचन भर आये—'विडम्बना यह कि उसी शारदाके स्पर्शने अक्षय अयश भाजना बनाया मन्थराको, भरत जननीको और.........ओह! मेरी भविष्य दर्शिनी दृष्टि यह क्या देखती है? देवि धरा-कुमारीके निर्मल चरितके प्रति अवधके लोक मानसमें यह कैसी कलुषित कुण्ठा—कैसा जुगुप्सित प्रवाद अंकुरित होनेको उत्सुक हो रहा है?'

'श्रीरामने अग्निकी साक्षीमें जिन्हें स्वीकार किया, सुरोंकी सर्वज्ञ दृष्टि जिनके कलुषकी छायासे त्रिकाल शुद्ध श्रीचरणोंमें नित्य नम्र है, वे त्रिभुवनादर्शा, भुवन-धात्री.....।' दीर्घ निःश्वास निकला उन स्वरोंको साकार करने वाले अधरोंको स्पर्श करता—'सरस्वती! तू अपनेको कैसे अपराधहीना मान लेगी? कोई नहीं कहेगा, किसीकी दृष्टि तेरी ओर नहीं उठेगी, यह कितनी बड़ी विडम्बना है। तेरा हृदय क्या कहेगा? सबको सुयश देनेका गर्व करनेवाली तू और तूने अयश दिया भरत-जननीको, तू अयशका हेतु बनी श्रीविदेह नन्दिनीके। मन्थराके मानसमें तूने मतिभ्रम उत्पन्न किया और अब अवधके जन मानसका मतिभ्रम रोक लेनेकी शक्ति है तुझमें?'

'अवधका जन मानस?' सहसा भगवती चौंक पड़ी—'श्रीरघुनाथके निज जनोंके मानसको स्पर्श करनेमें तू कब समर्थ थी? अब तेरा असामर्थ्य तो सामर्थ्य था ही कब? वहाँसे तो केवल श्रीराघवेन्द्रकी इच्छाके स्वर स्फुरित होते हैं। कहाँ है वहाँ तेरा कृतित्व? वनवासका वह काण्ड, छिः! तू स्वयं यन्त्र नहीं थी उन सर्वेश्वरकी

इच्छाका ? उनका अप्रत्यक्ष अनुमतिका आशीर्वाद न प्राप्त होता, मन्थराकी मति तेरी नियन्त्रण सीमामें कब थी ? श्रीरामके निज परिकरोंके मानस तक तेरी गति है कहाँ और तब तुझे यह विषाद क्यों ? वे लीलामय धरापर लीला करने आये हैं। उन मर्यादापुरुषोत्तमने कुछ लीलायें की हैं और कुछ लोकोत्तर मर्यादाओंको वे और मूर्त करना चाहते हैं, तुझे उनके सम्बन्धमें विचारका स्वत्व कहाँसे प्राप्त हो गया ? तू उनकी नित्य गुण-गायिका किंकरी, गुणगान कर तू उनका।'

विशादकी म्लानता जो इधर पर्याप्त समयसे श्रीमुखपर छायी थी, सहसा अदृश्य होगयी। दिशाएँ आलोकित हो उठीं उस अमल-धवल आलोक राशिसे। वीणापर शिथिल पड़ाकर सावधान हुआ और कोमल रागोंके अधिदेवताओंको मानो नूतन प्राण प्राप्त हो गये।

'श्रीरघुनाथ, दशग्रीव-जयी श्रीराघवेन्द्र पुष्पकसे अयोध्या पधार रहे हैं ! तू स्वयं अयोध्याकी गायिकाओंके मध्य उनकी स्वागत गायिकाके रूपमें उपस्थित हो सकती है इस समय।' हंसने पंख फड़फड़ाये और फुदककर वह स्वयं समीप आ गया। वीणा करोंमें उठ गयी। अधर उज्वल स्मितसे शोभित हो उठे। 'त्रिलोकीमें जो कंठ श्रीरघुनाथका यशोगान करना चाहे, शारदाका उसे अनिमन्त्रित आशीर्वाद ! जो कर उन श्रीराघवेन्द्रके स्वागत या सेवाकी कोई प्रस्तुति करना चाहें, सरस्वतीकी सम्पूर्ण कला उनकी सेवासे सार्थक बने।'

सहसा धरापर एक आश्चर्य हो गया। गीतकारोंके मानसमें अतर्क्य अनवरुद्ध दिव्य भावोंका स्रोत उमड़ पड़ा। स्वयं शिल्पी स्तम्भित रह गये अपने करोंकी कृतियोंका दर्शन करके। इतना नैपुण्य, इतनी गहन भङ्गिमा, जो कभी उन्होंने नहीं सोचा, जो अभ्यास उनके कर कभी प्राप्त नहीं कर सके, कवि अपने काव्य और शिल्पी अपनी कृतिपर आत्म विस्मृत हो उठा। वह क्या सोचता—'श्रीरघुनाथ लौट रहे हैं और उनके अमित प्रभावका यह आशीर्वाद।'

'धन्य हुई शारदा तू !' सरस्वती स्वयं आनन्दमग्ना हो उठीं—'तेरा संकल्प प्रभुके सुयशका साधन बना। तेरी सर्वेशके श्रीचरणोंमें उपस्थिति हुई और वहाँ उपस्थितिको अस्वीकृति मिला नहीं करती।'

अयोध्याके उस उल्लासमें अवकाश किसे था यह देखने पहिचाननेका कि उनके मध्य कौन कहाँसे, किस रूपमें कब आ खड़ा हुआ है।

—×—

६५. भगवती धरा—

'रमा आपकी किंकरी हैं, देवि' भगवती लक्ष्मीने वैसे भी कभी भू-देवीसे ईर्षा नहीं की है और जबसे आदि शक्तिके प्रति मातृत्व व्यक्त हुआ है धरा देवीमें, श्रीपद्मजाको वे अपनी पूजनीया प्रतीत होने लगी हैं और आज तो उनकी महिमा अचिन्त्य है। श्रीरघुनाथ, निखिल ब्रह्माण्ड नायक अयोध्या लौट रहे हैं। वे सिंहासनासीन होंगे और श्रीभूमिकुमारी साम्राज्ञी बनेंगी। पृथ्वीके पालनका व्रत लेंगे वे।

'आपका मुझपर सदासे सहोदराके समान स्नेह है, जानती हूं।' भू-देवी अत्यधिक आदर करती हैं सिन्धु सुताका—'किन्तु जबसे श्रीसीताने मुझे अपना मातृत्व प्रदान किया, अन्तरका सहज प्रवाह अवरुद्ध नहीं हुआ करता। पता नहीं क्यों आपको देखती हूं तो मेरा वात्सल्य उमड़ता है। आप उन सर्वेश्वरीकी अंशोद्भवा हैं और उन्होंने इस गौको एक गौरव दे दिया है।'

'गौ, गौ रूपधारी बनकर प्रायः आप अपने सङ्कटके समय परम पुरुषकी शरणापन्ना होती हैं। गौ आपका एक आधिदैविक रूप है, यह सत्य है; किन्तु इसीलिए तो आप सर्वसहा हैं, अनन्त वात्सल्यमयी हैं।' रमाने—अत्यन्त श्रद्धा समन्वित स्वरमें कहा—'गौ लोकमाता हैं और उन्हें निखिलेश्वरी भी माताका गौरव देनेसे अपनेको रोक नहीं पाती हैं।'

'निखिलेश्वरी जनक-नन्दिनी श्रीराम-भामा, किन्तु देवि ! उनका ऐश्वर्य मेरे अन्तरका कम ही स्पर्शकर पाता है।' भू-देवीके लोचन सहसा भर उठे—'मेरी वह भोली, भावमयी सुमन सुकुमार कन्या, वन-वन भटकना पड़ा उसे। आतप, वर्षा, वात उसे उटजमें व्यतीत करना पड़ा और अन्तमें अधम नैकषेयने जो अत्याचार किया········।'

'धराका भार उतारनेके लिए परम पुरुषको अवतीर्ण होना पड़ा। धराका भार दूर करनेको श्रीराम वनवासी बने। धराका भार मिटानेके लिए धन्या जनक कन्या राक्षस द्वारा अपहृता हुई।' दो क्षण रुककर धरा देवीका स्वर व्यक्त हुआ तो उसमें वेदना और ग्लानिका अपार प्रवाह आ गया 'धिक्कार है धराको। ऐसा क्या भार था, ऐसी कितनी विपत्ति थी। नष्ट ही हो जाती धरा दशग्रीवके अनियन्त्रित अत्याचारसे, श्रीजानकीको यह कष्ट तो न होता। सामान्य जन तक पुत्रीको पूज्या

मानते हैं । कन्याके पुरका जल तक अग्राह्य रखना चाहते हैं और लोक धारणी होकर धरा पुत्रीकी विपत्तिका मूल बनी । जिन्हें यह कन्या कहना चाहती है, कितना क्लेश दिया अपने स्वार्थके लिए इसने उनको ।'

'देवि ! आप अकारण दुःखी होती हैं ।' पद्मजाके विशाल दृग भी भाव-भीने हो उठे थे—'आप केवल निमित्त बनीं मर्यादापुरुषोंके अपने कार्यमें । सुरोंका संरक्षण धर्मकी मर्यादाओंकी स्थापना और आपके भारका दूरीकरण तो वे अपने संकल्पसे भी कर लेते ; किन्तु नगरमें, वनमें और लङ्कामें भी जो उनके दर्शनोंके प्यासे प्राण थे, उन्हें अपने विभिन्न आत्मीयोंके रूपमें अपनानेको जो उत्कण्ठित हृदय थे, उनका समाधान करनेका था कोई दूसरा मार्ग ? श्रीजनक-नन्दिनी लङ्का न जातीं, सरमा और त्रिजटाका तप एवं उपासना सफल होती ? वे उनके दर्शनकी अधिकारिणी हो चुकी थीं और जो सेवाधिकारणी हो चुकी, सर्वेश्वरी उन्हें वञ्चिता तो रख नहीं सकती थीं ।'

'सर्वेश्वरी, देवि, मुझे वे सर्वेश्वरी कम लगती हैं और आत्मजा अधिक ।' धरा देवीका मुख किञ्चित प्रसन्नता प्राप्त करने लगा—'अब तो वे जगदीश्वरी होने जा रही हैं, अयोध्या महाराज्ञी । मेरी कन्या अब मेरी पालिका बनेगी, यह आह्लाद मेरे सब अवसादको आत्मसात् कर लेता है ।

'और आप मुझे अपनी कन्याका कैंकर्य देनेमें सहायिका बनेंगी ।' भगवती रमाने अनुनयके स्वरमें कहा—'मेरा अनुरोध आपके चरणोंमें कभी असफल भी हो सकता है, यह मैं सोच नहीं सकती ।'

'अनुरोध जैसी कोई बात भी हो ।' धरा देवीके अधरोंपर स्मित आया—'अपने स्वत्वके लिए किसीसे अनुरोध करे, उसने उसे सम्मानित किया । आप अयोध्या पधारें । मैं अपने रूपमें (अधिदेव रूपमें) वहाँ जाऊँ, यह उचित हो नहीं सकता ।'

'आपका वाह्य रूप ही वहाँ मेरी सेवाका माध्यम बन सकता है ।' भगवती रमाने अपनी योजना स्पष्ट कर दी—'मैं और कोई सेवा कर सकनेकी शक्ति तो अपनेमें पाती नहीं, अयोध्याके पथों भवनों एवं उपवनोंकी स्वच्छता रखूँ, आपके वाह्य रूपका शृङ्गार करूँ ।'

'मेरे इस रूपको ही अपने हाथों सज्जित करनेका क्या कम व्यसन है आपको ?' भू-देवीका उल्लास हास्य बना । यह संवाद अधिक चल नहीं सकता था ; क्योंकि रमाको अयोध्या पहुंचनेकी त्वरा थी ।

—×—

६६. भगवान शेष—

'भूभार स्वयं शेषका भी भार तो है ।' पाताल तलमें मृणाल-गौर सहस्र-फणामौलि भगवान अनन्तके समीप आज मुनि मण्डल नहीं था। परमार्थ तत्त्व जब सशरीरी होकर पुष्पकसे अयोध्या पहुँचने ही वाला था, उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार आज दुर्लभ कहाँ था कि कोई अन्तर गुहामें उसके दर्शनका उत्कण्ठित साधनेच्छु पृच्छार्थ पाताल पहुँचता। समस्त साधनोंके आदि गुरु भगवान शेष; किन्तु साधनोंकी अपेक्षा तो साध्य तक पहुँचनेके लिए है और वह साध्य आज धरापर साकार था। मुनि-मण्डल आज अयोध्या न पहुँच कर पाताल आता? भगवान अनन्तको क्या प्रतीत नहीं होता कि उनके उपदेश ऊसर हृदयमें पड़े हैं, किन्तु उनका कोई शिष्य अनधिकारी हो कैसे सकता है।

सहस्र फणस्थ मणियोंकी काँतिसे ज्योतित पाताल प्रदेश। शान्त सुस्थिर भगवान शेष। उनके सहस्र फणोंमें-से एक पर निखिल भू-मण्डल एक सर्षपके समान स्थित है। आज पातालका यह पवित्र प्रान्त नीरव है, प्रशान्त है। मुनि मण्डल तो नहीं, ही है अपने अधीश्वरकी आराधना करने, उनके मृडाल गौर भोगको चन्दन, अगुरु, कुंकुमादि प्रसाधनोंको लेकर अपने सुकुमार करोंसे सज्जित करने लज्जारुणमुखी, हर्षचपल-लोचना, कोकिल कूजित स्वरा नागराज कुमारियाँ भी नहीं आयीं हैं। आज अयोध्याके राज-सदनकी सेवा तो सुराँगनाओंको भी दुर्लभ है; किन्तु कदाचित किसी राजकिंकरीकी सेवाका ही सौभाग्य प्राप्त हो जाय।' सबने कलही अनुमति माँगी थी और भगवान शेषने तो स्वयं भी उन्हें प्रेरणा प्रदान की थी।

'श्रीचरणोंमें यह क्षुद्रजन प्रणिपात करता है।' नागश्रेष्ठ वासुकि आये थे अपने कुछ आगुन्तुकोंके साथ। प्रायः सब महाकाय, अनेक मस्तक, मणिधर, सब अत्यन्त विनम्र थे अपने अधिष्ठाताके सम्मुख।

'प्रसन्नो भव!' प्रफुल स्वरोंमें आशीर्वाद मिला।

'आज श्रीचरण कुछ अधिक गम्भीर हैं।' सर्वथा समीप अपनी भोग कुण्डली पर स्थिर होते वासुकिने जिज्ञासा की।

'सोच रहा था कि भू-भार स्वयं शेषका भी भार तो है।' भगवान अनन्तका स्वर आर्द्र था—'मेरे परमाराध्यने अवतीर्ण होकर उसे दूर किया। उसे दूर करनेके लिए सर्वलोकाधीश्वरीने अपार क्लेश उठाये।'

'लोक-रावण रावण समाप्त हो गया। समस्त लोकोंका, स्वयं नागलोकका संकट भी दूर हुआ।' वासुकिका स्वर भी गद्गद् हो उठा—'हमारे रत्न उसने बार-बार हमारे कोषसे ही नहीं, हमारे फणोंसे बलात् उत्पाटित किये और नाग कन्याएँ, दशग्रीवने उन्हें सदा अपनी क्रीता समझा। हमारा अपमान, हमारा दमन, श्रीरघुनाथने हमें उससे परित्राण दिया।'

'उनके किसी जनकी कोई क्षुद्रतम सेवा हमसे कभी बन सके.........' भगवान शेषने प्रेरणा दी।

'यह किंकर प्रमत्त नहीं है प्रभु! किन्तु निरुपाय है वासुकि।' नागश्रेष्ठने बताया कि वे अभी पिछली रात्रि भी मानव वेशमें धरापर पहुंचे—'हमारे रत्न, वे कदर्य कंकड़ियोंमेंसे भी अधिक कुरूप हो गई हैं वहांके लिए। देवी धराने जो यत्र-तत्र रत्नराशि प्रकटकी है, कुछ क्षणोंको शिशु उनमें-से जिन्हें क्रीड़ार्थ उठा लें, वे धन्य हो गये, अन्यथा उपलोंको कौन अपने कक्षमें स्थान दे? आज तो धरापर चिन्तामणि भी मार्गमें अश्वोंके पदोंसे लुण्ठित होती है और नाग कुमारियाँ—किसी भी सेविकाकी पाद-सेवा प्राप्त होनेको वे कबसे वहाँ आतुर भटक रही हैं। भटक तो रही हैं उनके साथ सुरांगनाएँ भी।'

'आज श्रीरघुनाथ अयोध्या पहुंच रहे हैं।' भगवान शेषका स्वर प्रेमावेशमें विह्वल होने लगा।

'स्वयं भगवती लक्ष्मी सम्पूर्ण धराका श्रृङ्गार करनेमें व्यस्त हैं। मणियाँ लुढ़कती फिर रही हैं।' वासुकि कम विभोर नहीं थे—'अयोध्याके ही नहीं, प्रायः सम्पूर्ण धराके जन आज आनन्दमग्न हैं। अन्तरका आनन्दोदधि उमड़ पड़ा है और ऐसी अवस्थामें, कौन वाह्य उपकरणोंपर दृष्टिपात करे। स्वर्ण रत्न आज धराके मानवके लिए निष्प्रयोजन हैं। स्वर्ग और नाग लोकका सौन्दर्य उन्हें कदर्य प्रतीत हो, स्वाभाविक है, क्योंकि आज उनके मध्य स्वयं सौन्दर्य सिन्धु आगये हैं।'

'अब अयोध्यानाथ होंगे मेरे वे परमाराध्य। सिंहासनासीन श्रीजनकनन्दिनीके साथ वे नव-दूर्वादल श्याम.......' वाणी विरमित होगयी। अन्तर ध्यानके आनन्दमें डूब गया।

'कभी उन्होंने ही अपने एक रूपसे उदधि मन्थन किया था। सुर और असुर जब दोनों श्रान्त हो गये, वासुकिके मुख एवं पुच्छ भागको अपने श्रीकरोंमें लेकर वे स्वयं मन्थनोद्यत हुए।' जैसे आज भी नागश्रेष्ठ उन करोंके स्पर्शका अनुभव कर रहे हों।

और आप जानते हैं, जब दो भाव भरे प्राण एकत्र हुए हैं, उनके श्रेष्ठकी यह परस्पर चर्चा शीघ्र समाप्त होनेकी नहीं।

—*—

अमृतपुत्र

प्रस्तावना—

अब यह पुस्तक उपदेश न बनकर उपन्यास बन गयी है। अतः आवश्यक होगया है इसकी प्रस्तावना लिख देना। इसलिए आवश्यक हो गया है जिससे पाठक इसका उद्देश्य समझ सकें।

यह अद्भुत उपन्यास है। न ऐतिहासिक, न ठीक पौराणिक ही। आध्यात्मिक उपन्यास भी कहना कठिन है। इस प्रकारका कोई उपन्यास मैंने कहीं देखा-सुना नहीं।

'आञ्जनेयकी आत्मकथा' 'शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा' भी मेरे उपन्यास हैं और उपन्यास ही हैं 'प्रभु आवत' तथा 'वे मिलेंगे' भी; किन्तु चारों पौराणिक उपन्यास हैं। भक्तिरस प्रधान हैं। उन्हें भावुक भगवद्भक्त बड़े प्रेमसे पढ़ते हैं।

यह 'अमृतपुत्र' अपनी सर्वथा भिन्न परम्परा रखता है। इसका उद्देश्य है परिचय देना। गोलोक साकेतादिकी स्थिति क्या है, यह ग्रंथोंमें होनेपर भी लोकमानसमें स्पष्ट नहीं होती। उन अतीन्द्रिय लोकोंका वर्णन भी वाणीका विषय नहीं। फिर भी उनका कुछ स्वरूप इस उपन्याससे स्पष्ट होगा।

मर्त्यलोक (भूलोक), भुवर्लोक (प्रेत लोक), स्वर्ग (देवलोक), महर्लोक (सिद्धलोक), जनलोक (दिव्य ऋषि लोक), तपोलोक (तपस्वीलोक) और सत्यलोक (ब्रह्मलोक) कहाँ हैं, कैसे हैं ?

नरक क्या हैं ? यमलोक तथा यमराज, यमदूत, चित्रगुप्त क्या हैं और कैसे काम करते हैं ? वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि लोकपाल क्यों कहलाते हैं, क्या काम है इनका ? इनके लोकोंकी स्थिति क्या है ?

नीचेके सात लोक क्या ? अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल कहाँ हैं ? क्या स्थिति है इनकी ?

ब्रह्मा सृष्टि कैसे करते हैं ? विष्णुके पालक तथा रुद्रके संहारकर्ता होनेका क्या अर्थ है ? इनके लोक कहाँ है ? कैसे हैं ? शेषनाग ही का क्या अर्थ है ?

सतयुग, त्रेता, द्वापर युग कैसे हुआ करते हैं ? उस समयका रहन-सहन, सामाजिक स्थिति क्या है ?

इन सब विषयोंका पुराणोंमें वर्णन तो किया गया है, किन्तु बहुत संक्षिप्त और सांकेतिक रूपमें। इनका वर्णन किया जाय तो बहुत रूखा वर्णन होगा। यह 'अमृतपुत्र' उपन्यास इन सब विषयोंको समझानेके लिए है। हिन्दू पुराणोंके इन तथ्योंको सरल, सुबोध रूपमें वर्णन करनेके लिए है।

इस वर्णनके साथ भक्ति-सिद्धान्तका सर्वत्र रक्षण है। सनातन धर्मकी मान्यताओंको स्वीकार करके उसके नियमों, सिद्धान्तोंको इसमें स्पष्ट किया गया है।

'पादोऽस्य विश्वाभूतानि तृपादस्यामृतं दिवि।'

व्यापक ब्रह्मतत्त्वके एक पादमें माया-मण्डल है और शेष तीन पादमें अमृत—अविनाशी दिव्यलोक हैं।

बैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक, देवीलोक आदि दिव्य लोकोंकी चर्चा ग्रन्थोंमें है। इनके नाम सुने हैं आपने। ये भावलोक हैं। ये कितने हैं, कहना कठिन है। सम्भवतः असंख्य हैं; किन्तु यही परम सत्य हैं। सर्व-व्यापक हैं।

ब्रह्म सगुण-निर्गुण उभयरूप है। दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं। यह वर्णन विस्तारसे भगवान वासुदेव, श्रीद्वारिकाधीश, पार्थ-सारथि, नन्दनन्दन, शिवचरित तथा रामचरितके खण्डोंकी प्रस्तावनामें दिया जा चुका है। यहाँ इसका विस्तार नहीं। यहाँ केवल इतना कि ये भावलोक ही परम सत्य हैं, नित्य हैं। सृष्टि इनका प्रतिबिम्ब मात्र है। किसी भी निष्ठाके अनुसार आराधना करके इनमें-से किसी लोककी प्राप्ति होती है। निर्गुणतत्त्व ब्रह्म-ज्ञानसे प्राप्त होता है।

इन सगुण लोकोंकी ठीक स्थिति वर्णनका विषय नहीं है। इनमें देश, कालका वर्णन केवल समझानेके लिए है। देश-काल उनमें कल्पित हैं। हमारी सृष्टि वहाँ मानसिक-स्वप्न सृष्टिके समान है। देश-काल भी एक नहीं हैं। विभिन्न देश-काल हैं विभिन्न वर्गोंके। वस्तुतः देश और काल भी सापेक्ष तत्त्व हैं—कोई सत्य नहीं हैं।

इन लोकोंके पश्चात् बात आती है सृष्टिकी अर्थात् एक पाद विभूतिकी—इस माया-मण्डलकी। इसीमें देश, काल, पदार्थकी प्रतीति है और सब वर्णन इसीको लेकर हैं। इसमें भी ब्रह्माण्ड अनन्त हैं।

एक ब्रह्माण्डका अर्थ है एक सौर-मण्डल । अपने सौर जगतमें पृथ्वी, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये ग्रह तो पहिलेसे जाने हुए हैं । विज्ञानने तीन ग्रह और ढूंढ़े हैं—प्रजापति, वरुण और वारुणि (हर्षल, नेपच्यून और प्लूटो) ।

राहु और केतु छाया ग्रह हैं । चन्द्रमा पृथ्वीका उपग्रह है । ऐसे मंगल, गुरु, शनि आदिके भी उपग्रह हैं । इनमें गुरुके तीन चन्द्रमा हैं और शनिके तो कई हैं ।

आपको आकाशमें जो नीहारिका (छायापथ) दीखता है, उसमें जितने तारे हैं, सब सूर्य हैं । आकाशमें रात्रिमें दीखनेवाले तारोंमें ऊपरके ग्रहोंको छोड़ दें तो जितने तारे हैं, सब सूर्य हैं और इस देवयानी नीहारिका-के ही भीतर माने जाते हैं । इन तारोंकी संख्या कई अरब है । अपना सूर्य इस नीहारिका मण्डलका प्राय: सबसे छोटा और एक ओर लगभग कोनेमें स्थित तारा है ।

नीहारिकाएँ भी कितनी हैं ? अब विज्ञानने भी कह दिया कि अनन्त हैं । अनन्त नीहारिकाएँ और प्रत्येकमें अरबों सूर्य । इस प्रकार आप अब विराट् भगवानके—'रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्माण्ड' की कल्पना कर सकते हो ।

हम अपने ब्रह्माण्ड अर्थात् सूर्य-मण्डलसे बाहर न जा सकते और न उससे बाहरकी जानकारी पानेका हमारे पास कोई उपाय है । सात लोकोंका जो वर्णन है, वे हमारे अपने ही ब्रह्माण्डमें हैं और नीचेके सात लोक भी इसी ब्रह्माण्डके । प्रत्येक ब्रह्माण्डके अपने-अपने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र होते हैं । अत: हमारे इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा लोकपालोंका वर्णन ही पुराणोंमें है । अन्य ब्रह्माण्डोंका वर्णन हमारे लिए निष्प्रयोजन है और उन्हें जाननेका उपाय भी नहीं । दिव्य लोकोंका वर्णन तो उपासनाकी सिद्धिके लिए किया गया है ।

विज्ञान भी मानता है कि प्रकृतिमें प्रकाशसे तीव्रगामी दूसरा कोई तत्त्व नहीं है । अतः प्रकाशसे अधिक गति पायी नहीं जा सकती । हमारे सूर्य-मण्डलसे निकटतम तारा अर्थात् दूसरा सूर्य कम-से-कम चार प्रकाश वर्ष दूर है । कोई कभी किसी प्रकार प्रकाशकी गतिका भी वाहन बनाले—जिसकी कोई सम्भावना नहीं, तब भी निकटतम दूसरे ब्रह्माण्ड तक जाकर लौटनेमें कम-से-कम आठ वर्ष लगेंगे । अत: वैज्ञानिक भी सूर्य-मण्डलसे बाहर जाना सम्भव नहीं मानते हैं ।

ब्रह्मलोक तकका सब वर्णन हमारे अपने ब्रह्माण्डका है। जीव जिस ब्रह्माण्डका है, उसके पाप-पुण्यसे प्राप्त होनेवाले लोक उसी ब्रह्माण्डमें हैं। उसके कर्मसे होनेवाला जन्म-मरण उसी लोकमें; क्योंकि उसके संस्कार उसी लोकके हैं। संस्कारोंसे ही कर्म तथा कर्मफल होना है।

कर्मशास्त्र इस बातको इस ढंगसे कहता है कि पृथ्वीके मनुष्योंके ही कर्मसे पृथ्वीके सब पदार्थ तथा सूर्यादि ग्रह-उपग्रह, लोक-लोकान्तर बने हैं। ये सब कर्म लोक हैं। कर्म निर्मित हैं और उनमें कर्मफल भोगने ही जीव जाता है। अतः जिस ब्रह्माण्डमें कर्मलोक है, उसीमें उसके कर्मनिर्मित लोक भी बनेंगे। इस प्रकार मनुष्योंके समष्टि प्रारब्धसे ये लोक बनते हैं और व्यष्टि प्रारब्धसे उसे नाना योनियोंमें जन्म लेकर कर्मभोग पूरा करना पड़ता है।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तो एक तत्त्वके ही तीन रूप हैं। ये जीव नहीं होते। जो सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ, सर्वसञ्चालक है, जिसे ईश्वर कहा जाता है, वही सगुण निराकार तत्त्व प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रजोगुणका अधिष्ठाता होकर सृष्टिकर्ता है, सत्त्वगुणका अधिष्ठाता बनकर शेषशायी या बैकुण्ठ-विहारी विष्णु है और तमोगुणका वही अधिदेवता बनकर रुद्र है। ये रूप प्रत्येक ब्रह्माण्डमें हैं। उपास्य लोकोंमें जो परतत्त्व नारायण, शिव, शक्ति, श्रीराम या कृष्ण रूपमें हैं—उनके तो अंशभूत ये कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके अधिपति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इनकी शक्तियाँ ब्रह्माणी, रमा एवं उमा हैं।

इन त्रिदेवोंके अतिरिक्त ब्रह्माण्डमें कारकपुरुष और सामान्य जीव, ये दो प्रकार, भेद जीवोंके हैं। कारक पुरुषोंमें कुछ अतिशय पुण्यात्मा जीव हैं और कुछ ईश्वरीय विभूतियाँ हैं। लोकपाल दोनों प्रकारके होते हैं। जैसे इन्द्र सौ अश्वमेध सम्पन्न करनेवाला कोई भूतपूर्व चक्रवर्ती होता है। लेकिन वरुण, कुवेर, यम आदि लोकपाल, मनु, वेदव्यास प्रभृति कारक पुरुषोंमें सदा जीव ही नहीं होते। कभी जीव होते हैं और कभी भगवान ही इन रूपोंमें अवतीर्ण होते हैं। इस चतुर्युगीके वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन अवतार हैं।

'अमृतपुत्र' अथवा भद्र सीधे गोलोकसे आता है मर्त्यधरापर। यह अवधारणा इसलिए करनी पड़ी क्योंकि ब्रह्माण्डके सब लोकोंमें घूम आनेकी सामर्थ्य अपेक्षित थी और चारों युगोंका भी वर्णन करना था। देवर्षि नारद अथवा उनके जैसे किसी ऋषिको मुख्यपात्र बनानेपर उनकी मर्यादा उन्हें सर्वत्र पूज्य बनाये रखती। फलतः सहज सामान्य वातावरणका वर्णन कहीं सम्भव नहीं होता।

गोलोकके ही गोपकुमारको लेनेका भी कारण है। भावलोकोंमें मेरा अपना मन कन्हाईसे जितनी एकात्मता स्थापित कर पाता है, उतना तादात्म्य अन्यत्र सम्भव नहीं होता।

यह सब लिखनेका तात्पर्य मात्र इतना है कि आपके लिए यह अमृतपुत्र सुगम, सुबोध बन सके। आप अपना आत्मीय बना ले सकें इसे। लेकिन इसका यह तात्पर्य सर्वथा नहीं है कि मैंने यह सब सोचकर योजना-पूर्वक लिखा है। यह ऐसा बन गया तब मैं यह प्रस्तावना लिखने बैठा। मैं तो यह भी नहीं जानता था कि यह उपन्यास बनेगा। कृति तो यह यदि किसीकी है तो मेरे कन्हाईकी है।

'कला कलाके लिए' पर मेरी आस्था कभी नहीं रही। कलाको सोद्देश्य होना चाहिए और वह उद्देश्य समाजके लिए शिव होना चाहिए। वैसे यह उपन्यास है, सर्वथा कल्पित उपन्यास। अतः घटनाओंमें किसीकी सत्यताका प्रमाण आप मागेंगे तो अन्याय करेंगे। जो तथ्योंके विवरण हैं, वे भी कहीं एक स्थानपर नहीं हैं। अतः उनका मूल बतापाना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है। पता नहीं इससे पौराणिक सत्यको समझनेमें आपकी कितनी जानकारी बढ़ेगी।

केवल एक सन्तोष—इस अमृतपुत्रके माध्यमसे प्रायः कन्हाईका स्मरण होता रहा है और आपको भी होगा।

●❁●

अपनी बात—

अनेक बार व्यक्ति अकल्पित कार्य करनेको विवश होता है। मैं क्यों इस पुस्तकको लिखनेमें लगा—बहुत विचित्र बात है। उपदेश देने-लिखनेमें मेरी कोई रुचि नहीं है और श्रीकृष्ण-चरित, श्रीरामचरित लिखनेके बादसे तो सर्वथा नहीं। श्रीमद्‌भागवतकी वाणी मुझे बहुत ही प्रिय है—

स वाग्विसर्गो जनताघसंप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानियत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः।

—१२.१२.५१

लेकिन यह पुस्तक उपदेशकी ही बनेगी—यह भी कैसे कह सकता हूँ। अपनी ओरसे लिखने नहीं बैठा। कभी सोचकर, योजना बनाकर लिखा नहीं। सदाकी भाँति एक शीर्षक सूची बनाली है। सूची बनाकर आशङ्का होती है, यह निरा उपदेश न बन जाय। बनेगा क्या, यह तो वह जानता है जो अन्तर्यामी बनकर सदा लिखवाता रहा है। वह नटखट तो है; किन्तु अपना है, अतः वह कुछ करावे, ठीक ही करावेगा।

इस लेखन-प्रवृत्तिकी भी एक कथा है। यहाँ मसूरीमें अभी पिछले सप्ताह ही रात्रिमें लगभग एक बजे नींद खुल गयी और मनमें पिछली लिखी एक झाँकी चलने लगी। वह बहुत कुछ परिवर्तित होती गयी। वही है इस पुस्तकका 'तुम्हारी जय हो' शीर्षक।

बात समाप्त हो जाती, लिखनेकी नौबत ही न आती यदि वह झाँकी पूरी होकर नींद आ जाती। लेकिन दूसरी झाँकी प्रारम्भ हो गयी—'भूत या भविष्य' और उसके चलते पौने तीन बज गये।

मेरे लिए यह नवीन बात थी। मैं डटकर सोने वालोंमें हूँ। रात्रिमें यह निद्रा-भंग मुझे अच्छा नहीं लगा। डर लगा कि यह क्रम चला तो सवेरा हो जायगा। चार बजनेमें पाँच-दस मिनट रहते शय्या त्याग न करूँ तो नित्यकर्म सूर्योदयसे पूर्व पूरे ही न हों। अतः मैंने मनीरामसे कहा—'बन्द कर दो यह सब और सो जाओ।'

इस प्रकार निद्रा नहीं आती लगी तो मैंने कहा अपने कन्हाईसे—'भैया, सो जानें दे। यह सब मैं लिख दूँगा। एक छोटी पुस्तक लिख दूँगा—बस ?'

सचमुच मनकी उधेड़-बुन बन्द हो गयी और मैं सो गया। सबेरे उठकर मैंने कापी मँगवायी और सूची बना डाली। अब इस सूचीके आधारपर लिखा क्या जायगा, यह बात यह नटखट मयूरमुकुटी ही जानता होगा। मैं तो रात्रिमें इसे दिये वचनको पालन करनेके लिए लेखनी लेकर कागज काला करने बैठ गया हूँ।

कागज ही तो काला किया है मैंने सदा। उसमें जो वर्ण्य विषय है, वह तो मेरा नहीं है। वह सदा ही कन्हाईका अनुदान रहा है। इस बार ही कोई नयी बात नहीं होनी; किन्तु इसलिए अटपटा लग रहा है; क्योंकि सूची ऐसी बनी है जैसे यह उपदेशका पोथा बननेवाला हो।

कन्हाईकी जैसी इच्छा—इस बाबा नन्दके लाडलेकी इच्छा पूर्ण हो। लेकिन उपदेश ही क्यों—यह उपन्यास भी तो बन सकता है।

रॉकफोर्ट लॉज
मसूरी

—सुदर्शन सिंह
१४-६-७९

ऐन्द्रियक जीवन—

'आप आँख बन्द किये क्यों बैठे हैं?' भद्रने झुंझलाकर उस ऋषिकी दाढ़ी हिला दी। यह भी कोई बात है कि कोई गोलोकमें आकर इस प्रकार रीढ़ सीधी करके नेत्र बन्द करके बैठे। ध्यान ही करना हो तो पृथ्वी है, महर्लोक है, तपोलोक है, जनलोक है और सत्यलोक-ब्रह्मलोक भी है। दिव्यलोकमें ध्यान करनेकी हठ थी तो यह जटाधारी शिवलोक क्यों नहीं गया।

'क्या?' उस वलीपलित काय, सुदीर्घजटीने नेत्र खोले और सामने देखा। कुछ रोष भरे स्वरमें पूछा—'यहाँ अन्तर्मुख होना अपराध है?'

'अन्तर्मुख? किसलिए?' भद्रको विचित्र लगता है यह अन्तर्मुख शब्द। उसे, इसमें अपने कन्हाईकी उपेक्षा भी लगती है। यह नन्दनन्दन समीप हो और कोई नेत्र बन्द करके बैठे! यह समीप न हो तो इसे ढूंढना चाहिये या ऐसे गुमसुम बैठ रहना चाहिये। उसने तनिक झुककर उन उजलेकेश मुनिमहाराजको घूरकर देखा—'आपके दोनों नेत्र ठीक हैं। नासिका, कर्ण भी ठीक हैं और आप तो बोल भी लेते हैं।'

एक तेरह-चौदह वर्षका नटखट बालक इस प्रकार झुककर आँख, नाक, कान देखे, मुख समीप लाकर जैसे पता लगा रहा हो कि कान या नाक में छिद्र है या नहीं तो आपको कैसा लगेगा? कुशल कहिये कि उसने कोई तिनका डालकर देखनेकी धृष्टता नहीं की थी।

'तुम क्या कहना चाहते हो?' मुनि महाराजको बालककी चेष्टासे रोष आ गया। ये दढ़ियल बाबाजी लोग रुष्ट शीघ्र हो जाते हैं—'इन्द्रियाँ हैं, अतः उनका उपयोग—ऐन्द्रियक जीवन ही सब कुछ है? इनके निरोधका, अन्तर्मुख होनेका प्रयोजन तुम्हें सीखना चाहिये! तुम ऐन्द्रियक जीवन प्राप्त करो।'

'अच्छा!' मुनि महाराजको आशा थी कि बालक डरेगा, हाथ जोड़ेगा। गिड़गिड़ाकर शाप-निवृत्तिकी प्रार्थना करेगा; किन्तु बालकने तो ताली बजायी। खुलकर हँसा—'कन्हाई मेरे साथ रहेगा; किन्तु अब वह आपको अँगूठा दिखा दे तो मैं नहीं जानता।'

'ऐं !' मुनि महाराज चौंके; किन्तु अब चौंकनेसे लाभ ? गोलोक कोई स्थूल लोक है कि वहाँसे किसीको निकालना पड़े या कोई वहाँ अपनी शक्तिके बलपर रह सके। भगवती योगमालाकी पलकें मात्र हिलती हैं और कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड बन जाते या मिट जाते हैं।

मुनि महाराजने जैसे ही रोष-ग्रहण किया, वे समझ ही नहीं सके कि उनकी अवस्था क्या हुई या हो रही है। अपना शाप भी उन्होंने कहाँ पूरा किया, किसे दिया, यह बतलानेकी स्थितिमें वे भी नहीं रह गये। गोलोक कहाँ गया, क्या हुआ—उन्हें पता नहीं।

मुनि महाराजको केवल यह लगा कि वे उस अतीन्द्रिय दिव्यलोकसे बाहर हो गये और बाहर-बाहर होते जा रहे हैं। ऊपरसे नीचेकी बात व्यर्थ है। वहाँ काल या स्थानका प्रवेश नहीं है। जैसा अनुभव आपको गाढ़ निद्रासे जागनेपर होता है, ठीक वैसा भी नहीं। किसीको यदि क्षण-दो-क्षणको प्रगाढ़ ध्यान हुआ हो तो जैसा अनुभव उस ध्यानसे जागनेपर होता है, कुछ-कुछ वैसा अनुभव।

वे महामुनि थे—इतने भक्त एवं ज्ञानी कि गोलोक पहुँच सके थे। दुर्भाग्य उनका कि दीर्घकाल तक योगी भी रहे थे। निर्विकल्प-निर्वीज समाधिसिद्ध योगी। अतः गोलोक पहुँचते ही वहाँके अकल्पनीय सौन्दर्यने उन्हें अन्तर्मुख कर दिया था।

अब उलटी गति प्रारम्भ हो गयी थी। वे समझ रहे थे कि वे बड़े वेगसे जैसे सूक्ष्मतमसे स्थूलकी ओर फेंक दिये गये हैं; किन्तु विवश—कोई प्रयत्न सम्भव नहीं था। कहीं अवस्थिति नहीं हो रही थी। अवस्थानके प्रयत्नको भी अवकाश नहीं था।

ठीक सोचनेकी भी स्थिति तब प्राप्त हुई जब वे यह समझ सके कि वे स्थूल प्रकृतिके क्षेत्रमें पहुँच गये हैं। लेकिन प्रकृतिमें आकर भी सूर्य-लोकमें रुक जाना सम्भव नहीं हुआ। किसी अलक्ष्य शक्तिने उन्हें जैसे बलपूर्वक अर्चिमार्गसे खींचकर पितृयानके पथमें पटक दिया।

'देव ! मुझसे अपराध तो हो गया।' पितृलोक पहुँचकर जब स्थिर हुए, पहिला संकल्प उठ सका, उठा—'लेकिन अब इस जनका भी आग्रह है कि आप ही इसे अपनावेंगे और आप ही भेजेंगे तो यह आपके कन्हाईके चरणोंके समीप जायगा। आप पीछे जायेंगे—यह पहिले जायगा,

ऐसा निर्णय यह आपकी अकल्पनीय उदारतापर आस्था करके करता है। आप इसे नेत्र खोलकर जो दर्शन कराना चाहते थे, जिसे अपनी अज्ञतासे इसने खो दिया, वह आप ही इसे देंगे। आपका संकल्प व्यर्थ नहीं जायगा—अतः अब इसका क्या होता है, यह चिन्ता आप ही करना।'

'ओम्!' पितृलोकमें महामायाकी यह स्वीकृति भले न सुनी गयी हो; किन्तु अनन्तके शाश्वत विधानमें तो वह अंकित हो गयी। कन्हाई या कन्हाईके किसी अपनेसे लगकर किसीका अमंगल तो हुआ नहीं करता और कोई भावना उनसे लगे तो महामायाको भी उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। इस नियमको वे भी अस्वीकार तो कर नहीं सकतीं।

अब इससे क्या बनता-बिगड़ता है कि वे महामुनि अब महामुनि नहीं रहेंगे। वे ऐन्द्रिय प्राणी भी नहीं हो सकते। उन्हें अब पाषाण बनना है।

परिहास—

'अचानक उन मुनि महाराजको क्या हुआ ?' भद्र चौंका ! अब यह मत पूछिये कि कितने समय पीछे। क्योंकि जहाँ कालका प्रवेश ही नहीं है, वहाँ शीघ्र या देरकी बात बनती नहीं। वहाँ केवल वर्तमान रहता है।

'तू उसका स्मरण करता है ?' कन्हाईने कुछ रोषपूर्वक उलाहनेके स्वरमें कहा। ठीक कहा; क्योंकि यह नीलसुन्दर समीप हो तो कोई दूसरेका स्मरण क्यों करे और यह समीप न हो तो इसके चिन्तनके अतिरिक्त अन्य स्मरण ही क्यों आवे ?

'तू उनसे असन्तुष्ट क्यों है ?' भद्रको अपने श्यामसुन्दरके स्वरसे लगा कि इसे उन मुनिकी चर्चा ही बुरी लगी है।

'उसकी बात मत कर ! वह बहुत बुरा है।' कन्हाई झुंझला गया— 'उसने तुझे शाप दिया। हूँ !

इस 'हूँ' का अर्थ भद्र जानता है। इसका अर्थ है—'मैं देख लूँगा।'

'बेचारा मुनि' भद्रके चित्तमें करुणा उमड़ पड़ी। यह कमललोचन कन्हाई अपनोंका है। अब इससे उन मुनिके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता। यह सुननेवाला नहीं। उलटे अधिक रुष्ट होगा। कोई अनजानमें भी इसके अपनोंका कुछ अहित सोचने लगे -कन्हाई रूठा धरा है और कन्हाई रूठ गया तो समष्टिमें दूसरा कौन जो सन्तुष्ट बना रहेगा ? कन्हाई रूठा तो योगमाया कुपित और जिसपर वे कुपित उसपर कृपा करनेका साहस कोई देवता करेगा ? अब उस बेचारे मुनिका जप-तप, साधन-भजन सब नगण्य हो गया।

'उसका शाप ? कैसा शाप ?' भद्रने सचमुच अब तक ध्यान ही नहीं दिया था कि उसे कोई शाप भी दिया गया है। जब तक वह स्वयं इच्छा न करे, किसीका शाप उसका स्पर्श कैसे कर सकता है।

'तुझे शाप दिया उसने !' श्यामके मुखपर रोषकी अरुणिमा है। इसका अर्थ ही है कि उस अभागे मुनिका पतन चल रहा है। वह कहीं किञ्चित् भी रुक नहीं पाता है।

'शाप ? मुझे कहाँ लगा शाप ?' भद्रने इस प्रकार अपनी भुजा, पैर देखे जैसे शाप भी गोमय जैसा कुछ होगा और उसका कोई छींटा कहीं पड़ा हो तो उसे देख लेगा।

'ऐन्द्रियक जीवन प्राप्त करो !' यह शाप उसने तुझे दिया।' कन्हाईका स्वर वैसा रोष भरा नहीं सही; किन्तु भरा भरा है—'तूने भी झटपट स्वीकार कर लिया।'

'अरे !' भद्र तो खुलकर हँस पड़ा। उसका यह छोटा भाई इसलिए इतना रुष्ट है और रोने-रोनेको हो रहा है ? श्यामके दोनों कन्धोंपर अपने दोनों हाथ रख दिये भद्रने। कन्हाईको समझाना पड़ेगा और यह केवल स्नेहकी भाषा समझता है।

'ऐन्द्रियक जीवन—मैं तुझे देख रहा हूँ, छू रहा हूँ, ले सूँघ रहा हूँ। तेरी बात सुन रहा हूँ—यही तो ऐन्द्रियक जीवन।' भद्रको तो सचमुच इसमें शाप जैसी कोई बात नहीं लगती है।

'लेकिन वह खूसट मनमें यह लेकर शाप दे गया कि तुझे मर्त्यधरा-पर ऐन्द्रियक जीवन प्राप्त करना है।' बड़ी कठिनाईसे श्याम यह कह सका। इसके बड़े-बड़े नेत्रोंसे बिन्दु टपकने लगे।

'तो हो क्या गया ?' विचित्र है भद्र भी। इसे इस शापमें भी कोई भय करने या चिन्ता करने जैसी बात नहीं लगती। भय और चिन्ता इसके स्वभावमें ही नहीं है। इसने झटपट समाधान ढूंढ़ लिया—'बड़ा आनन्द आवेगा। अपना यह लोक तो नित्य है। यह तो कहीं जाता नहीं। मैं मर्त्यधरापर ऐन्द्रियक जीवनमें ऐसे ही तुझे स्नेह दूँगा। बस तू इसमें एक संशोधन कर दे।'

'हाँ' भद्र अपने पटुकेसे श्यामके नेत्र पोंछनेमें लगा था। उसका हाथ तनिक हटाकर कन्हाई हाँ करके उसके मुखकी ओर ऐसे देखने लगा जैसे कह रहा हो—'तू बता तो सही। मैं एक तो क्या एक लाख संशोधन भी अभी किये देता हूँ।'

'मेरा केवल तू रहेगा वहाँ भी।' भद्रने स्थिर गम्भीर स्वरमें श्यामकी ओर सीधे देखते कहा—'दूसरे किसीको अपने-मेरे मध्यमें नहीं आने देगा।'

'हूँ' कन्हाईने अपने वाम-करसे अपनी घुंघराली सुचिक्कन अलकें टटोलीं—'भाभियाँ मेरे सिरमें एक भी केश नहीं रहने देंगीं।'

'तू उनसे समझते रहना।' भद्र अब खुलकर हँस पड़ा—'उनमें जो तुझ स्नेह दे सके, तेरे नाते यदा-कदा मिलती रह सकती है। सदा सर्वत्र एकमात्र तू मेरा बना रहेगा।'

'कोई नया बना रहूँगा।' कन्हाईके भी अधरोंपर अब स्मित आया—'तू ना भी करे तो मैं तुझे छोड़कर जाऊँगा कहाँ? दाऊ दादा तो चाहे जब गुमसुम बैठ जाता है। मुझे फिर कौन सम्हालेगा?'

'फिर तू उन मुनिसे इतना क्यों रुष्ट था?' भद्रने फिर चर्चा की—'उन्होंने तो परिहास किया है।'

'उसका नाम मत ले।' कन्हाईको उनकी चर्चा भी सुननी स्वीकार नहीं—'ये दढ़ियल जटी परिहास क्या जानें!'

'परिहास तो है ही।' भद्र समझ गया कि कन्हाईसे उन मुनिकी चर्चा करना व्यर्थ है। अब उनको यहाँ लाना हो तो स्वयं ही लाना पड़ेगा और इसमें उनके शापको निमित्त बनाया जा सकता है।

—●—

पुनः परिहास–

अनेकता और एकता भी देश और कालकी कृतियाँ हैं। कणोंकी अनेकता देश दिखलाता है और क्षणोंका अनेकत्व कालकी कल्पना है। जहाँ देश और काल ही कल्पित हो जाते हैं, उस दिव्य लोकमें अनेकत्व एवं एकत्वका भी कुछ अर्थ नहीं है। वहाँ एक साथ प्रत्येक अनेक भी है और असंख्य होकर भी एक ही है। धराका मानव वहाँकी कल्पना किसी प्रकार कर नहीं सकता। वहाँ जो कुछ है लीला है। देश, काल, वय आदि कोई बाधा वहाँ नहीं। एक साथ असंख्य लीला और सब एककी। सब पात्र-उपकरण एक और असंख्य भी। अतः घटनाओं – लीलाका वर्णन करनेमें क्रम देना वहाँ सम्भव नहीं है।

भद्रके चौंकनेकी ही बारी थी इस समय। इसका यह नटखट सखा है ही ऐसा कि किसीको चौंकाकर ताली बजाकर कूद-कूदकर हँसता है। सहसा कहींसे विशाखा आयी और भद्रके पैर ही पकड़कर रोने लगी।

'लड़कियोंके लिए रोना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। रुदन तो इनकी प्रकृतिका आवश्यक अंग है।' आप भले भद्रसे सहमत न हों; किन्तु यह कहता है कि 'लड़कियाँ रोवें नहीं तो इनका आहार कदाचित ही पचे। अतः ये सकारण ही रोवें, ऐसा नहीं है। ये तो कल्पित कारण बनाकर भी रोती हैं और खूब फूटफूट कर रोती हैं।'

लड़कियोंमें कोई रोने लगे तो उधर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। उसे हँसा देनेका मन हो तो आप भी वैसे ही रोने लगो। भले झूठ-मूठको ही रुदन करो। लेकिन कोई बिना बात आपके ही पैर पकड़कर रोने लगे तो? भद्रको वैसे भी लड़कियोंके रुदनसे उपरति है और कोई उसका ही पैर या गला पकड़कर रोवे, इससे तो यह बहुत घबड़ाता है।

'अरी क्या हुआ?' भद्रने अपना पैर छुड़ानेका प्रयत्न करते कहा—'तुझे बन्दरने डरा दिया या बिल्लीने काट खाया? यह मेरा पैर है। इसे छोड़ और पैर ही पकड़कर रोनेसे तेरा आजका आहार पचनेवाला हो तो इस कन्हाईका पकड़। मैं तेरी पाचक औषधि बननेको प्रस्तुत नहीं हूँ।'

'मुझे चाहे जितना चिढ़ालो !' विशाखाने तनिक मुख ऊपर उठाया और रोते-रोते ही बोली—'लेकिन मेरी स्वामिनीपर दया करो !'

'कनूँ ! बुरी बात है।' भद्रका मुख सहसा गम्भीर हो गया—'तू उस भोली सरलाको भी सताता है ?'

'मैंने क्या किया है ?' कन्हाईने दोनों हाथोंसे पकड़कर विशाखाका सिर झकझोर दिया—'तू मुझे ही डाँट लगवाने दौड़ी आयी है ?'

'इन्होंने कुछ नहीं किया' दूसरा अवसर होता तो विशाखा कन्हाईको अंगूठा दिखा देती भद्रसे छिपाकर; किन्तु इस समय यह बहुत व्याकुल है—'अपराध मेरा है। मुझे शाप दो, यहाँसे निकाल दो। कुछ करो मेरा। मैं भाग्यहीना तो यमानुजा हूँ। जड़ जलरूपा हूँ। तुम दोनोंने कृपा करके अपना चरणाश्रय दिया और तुम्हारे इन सखाकी कृपासे स्वामिनीकी सेवा मिल गयी तो मैं भूल ही गयी कि मैं स्वभाव-निष्ठुरा हूँ। कृपा करना मेरा काम नहीं है। लेकिन स्वामिनीका रुदन मुझसे नहीं देखा जाता। तुम उन-पर दया करो।'

'कहाँ हैं वे ?' भद्र सचमुच व्याकुल हो उठा। सामान्यतः यह श्रीराधाके सम्मुख नहीं जाता है कि वे शीलमयी इसका बहुत सम्मान करती हैं। बहुत संकोच करती हैं। कन्हाईसे दस महीने बड़ा क्या है, वे तो इसे दाऊके समान ही मानती हैं। उनको संकोचमें डालना इसे अत्यन्त अप्रिय है। वे रुदन कर रही हैं, यह सम्वाद ही इसे असह्य है। श्रीवृषभानु-नन्दिनीकी आँखोंमें अश्रु—भद्र व्याकुल हो गया है।

'वे यहाँ नहीं हैं।' विशाखाने अत्यन्त दीन स्वरमें कहा—'यहाँ आना भी स्वीकार नहीं करती हैं। शिवलोकके मार्ग में बैठी हैं और वहाँसे भगवती पार्वतीके पास भी जाना नहीं चाहतीं।'

'शिवलोकके मार्गमें ? भूत-प्रेतोंकी समीपतामें और आक-धतूरेके वनके पास ?' शिवलोक परम दिव्य सही; किन्तु श्रीकीर्तिकुमारीके कुछ क्षण भी रुकने योग्य कैसे हो सकता है। भद्रने श्यामका हाथ पकड़ा—'चल ! ले आवें उस पागल लड़कीको।'

'मैं चलूँ ?' श्यामसुन्दर हिचक गया। विशाखाके मुखकी ओर देखने लगा। यदि इसके जानेसे बात बनने योग्य होती तो विशाखा भद्रके पैर पकड़कर नहीं रोती।

'इनको मत ले जाओ !' विशाखाने फूट-फूटकर रुदन प्रारम्भ कर दिया—'पहिले मुझे कोई भारी दण्ड दे दो। मैं क्षमा माँगनेकी अधिकारिणी नहीं हूँ।'

'भारी दण्ड तो गोकुलमें मेरे पिताजीका है।' भद्र इस समय भी परिहास कर गया—'मैं तो छोटा-सा लकुट रखता हूँ; किन्तु तू उनकी लाठी उठा पावेगी ?'

'हँसी मत करो !'

'तू उठती है या तेरी चुटिया पकड़कर उठाना पड़ेगा।' भद्र झल्लाकर बोला—'तेरी बात फिर सुन लूँगा। ललीके समीप चल !'

'अच्छा चलो !' बहुत करुणस्वरमें कहकर विशाखा उठी—'मुझसे कहीं अधिक कातर होकर मेरी स्वामिनी वहाँ तुम्हारे पैर पकड़ लेंगी तो सहा जायगा तुमसे ? इसलिए मेरी बात यहीं सुनलो। तुम दोनों सुनलो और इस पापिष्ठाको दण्ड दे लो तब वहाँ जाओ।'

'तूने क्या किया है ?' भद्र खड़ा रह गया। यद्यपि उसका स्वर कह रहा था कि जो कुछ कहना है, झटपट कह दे।

'मैं भूल गयी कि यम-भगिनीको बहुत दयालु नहीं होना चाहिये।' विशाखाने रोते-रोते ही कहा—'मैं कृपामयी बनने चली थी। स्वामिनीकी सेवाका अवसर दे दिया मैंने सुवर्चलाको।'

'यह तो कोई अपराध नहीं है।' भद्रको लगा कि विशाखा कहीं कल्पित कारणसे ही तो रुदन नहीं कर रही है और अपनी स्वामिनीका नाम लेकर उसे छकाने तो नहीं आयी है—श्रीकीर्तिकुमारी केवल कृपाका घनीभाव हैं। उनका सामीप्य जिनको प्राप्य है, उनमें किञ्चित् भी कृपाकी न्यूनता उन करुणामयीकी अवमानना ही होगी।'

'कृपाकी अनधिकारिणीको मैंने अपनी कृपापात्रा बना लिया।' विशाखाका रुदन रुक नहीं रहा था—'मैंने देखा ही नहीं कि उसमें प्रीति नहीं, केवल पातिव्रत्य है और उसका अहंकार भी।'

'सुवर्चलाका क्या हुआ ?' भद्रको अब आशंका हो गयी। अवश्य इस लड़कीके साथ कुछ हुआ लगता है। श्रीराधाकी सब किंकरियोंपर—अत्यन्त वहिर्व्यूहकी दासियों तकपर भद्रका बहुत स्नेह है। यह सुवर्चला तो विशाखाकी सेविका थी।

'उरा कुतियाको भूँकना था तो धरा कहाँ छोटी थी उसके लिए।' विशाखाके रुदनमें रोषका स्वर सम्मिलित हुआ—'वह वाणी वञ्चिता धरापर घूम कर सकती है; किन्तु इस अभागिनीके कारण स्वामिनी मार्गमें बैठी हैं। रुदन कर रही हैं।'

'तूने शाप दिया सुवर्चलाको ? क्या किया था उसने ?' भद्रने आतुरतापूर्वक पूछा।

'मैं इतनी धृष्टता करूँगी, ऐसी अधमा हो गयी तुम्हारी दृष्टिमें ?' विशाखाने पैरोंपर सिर पटक दिया—'स्वामिनीके सम्मुख मैं ऐसा साहस करती ? भगवती योगमाया कात्यायनी कहीं चली गयी हैं ?'

'भगवती योगमाया' भद्रको उन महामुनिका स्मरण आ गया। उन्होंने भद्रको ऐन्द्रियक जीवन व्यतीत करनेका शाप दिया और योगमायाने विधान कर दिया कि उन मुनिसे ऐन्द्रियक जीवन ही नहीं, ऐन्द्रियक चेतना भी छीन ली जाय। 'सुवर्चलाने किसीको शाप दिया ?'

'जीजीको– हेमाजीजीको शाप दिया उसने। उन्हींको क्यों, दूसरी जीजियोंको भी शाप दिया और स्वयं चली गयी कुतिया बनने।' विशाखाको बहुत क्रोध था सुवर्चलापर।

'अच्छा परिहास है।' भद्रको तनिक भी बुरा नहीं लगा। 'क्या शाप दिया उसने ?'

'मैं अपने जले मुखसे उसकी आवृत्ति कर सकूँगी, यही आशा है तुम्हें मुझसे ?' विशाखाका मुख बहुत दयनीय हो उठा—'स्वर्णाजीजी सबके साथ स्वामिनीके समीप ही हैं। लेकिन आज स्वामिनी उनका अनुरोध भी स्वीकार नहीं कर रही हैं।'

'बहुत भोली है वह पगली।' भद्र अब चल पड़ा—'उसे लगता होगा कि सुवर्चलाका अपराध उसका अपना है। हेमाने क्रोध किया ?'

'उनको क्रोध शीघ्र आता तो है; किन्तु आया नहीं।' विशाखाने रोते-रोते बतलाया—'स्वर्णाजीजी हँस पड़ीं और फिर तो सब स्वामिनीको समझानेमें लग गयी हैं।'

'शाप कब किस रूपमें स्वीकार किया जाय, यह संशोधन तो लली ही कर देती।' भद्रको कुछ अटपटा नहीं लगता—'कन्हाई भी कर देगा। उस पगलीको समझाना पड़ेगा। चिन्ता तो करनी पड़ेगी सुवर्चलाकी।' ●

आशीर्वाद–

'अनुरोध करने आया हूँ दादा !' सुबल दौड़ता आया और भद्रके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर कन्धेपर सिर रखकर फूट पड़ा—'इस विशाखा-को बचाले। बहिन तेरे अतिरिक्त और किसीकी बात नहीं मानेगी। अब वह इसे समीप भी नहीं देखना चाहेगी। तू जानता है, मुझे ये सब बहिन जैसी ही लगती हैं और बहिन इनमें-से एकको भी पृथक करके बहुत दु:खी हो जायगी।'

'तू बहुत भोला है। अपनी बहिनको भी नहीं समझता।' भद्रने सुबलके नेत्र पोंछे—'ललीको रोष करना आता ही नहीं। वह केवल कृपा कर सकती है। किसीपर कठोर नहीं हो सकती।'

'स्वामिनीको मुख मैं कैसे दिखाऊँगी।' विशाखा फिर रोने लगी—'मुझे कोई शाप क्यों नहीं देता है।'

'तू चुपचाप चली चल।' भद्रने सुबलका हाथ पकड़ा—'तू बतला कि हुआ क्या ?'

सुबल क्या बतला देता। उसे भी पूरा पता नहीं था। उसे तो यही पता था कि उसकी बहिन कैलास गयी थी और लौटते मार्गमें रुक गयी हैं। विशाखा रोती भद्रके समीप गयी है तो उसीसे भद्रका कोई अपराध हुआ होगा। लेकिन भद्रका अपराध हुआ तो बहिन क्षमा कर नहीं सकती, यह सुबल भली प्रकार जानता है।

अच्छा हुआ कि थोड़ा आगे बढ़ आयी स्वर्णा इन सबोंको आते देखकर। भद्रने अपनी ज्येष्ठा पत्नीको देखते ही पूछा—'स्वर्ण, क्या हुआ है ?'

'तुम्हारी लली एक परिहास मात्रसे अतिशय दु:खित हो रही हैं।' स्वर्णाके स्वरमें सहजभाव था—'तुम उन्हें सदन चलनेको मनालो। दूसरा कुछ नहीं हुआ है।'

'सुवर्चलाने इतना बड़ा शाप दे दिया और कुछ हुआ ही नहीं ?' विशाखा आश्चर्यसे स्वर्णाको देखने लगी—'जीजी ! तुम इसे परिहास कहती हो ?'

'कैसा शाप ?' भद्रने पत्नीसे ही पूछा।

'हम सब कैलाससे लौट रही थीं तो सुवर्चलाने कह दिया—'भगवती पार्वती ही वस्तुतः पतिव्रता हैं। दूसरी नारियोंको उनकी कृपासे पातिव्रत प्राप्त होता है।' सुवर्चला अभी नवीन आयी—आयी भी इस विशाखाकी कृपासे। धरापर वह दृढ़ पतिव्रता थी और भगवती उमाकी नैष्ठिक आराधिका। अतः उसमें अभी श्रद्धाका आवेश था।

'अम्बा आद्याका स्तवन कोई दोष तो है नहीं।' भद्रकी श्रद्धा ही कहाँ उन जगद्धात्रीके प्रति अल्प है।

'बहिन हेमा बोल पड़ी थीं कि नारीका सहज स्वभाव पातिव्रत है। वह विकृतिको अपनाती है यदि इस स्वभावसे विचलित होती है। विकृति सकारण होती है, प्रकृतिके लिए तो कोई कारण आवश्यक नहीं होता।'

'सुवर्चलाका दुर्भाग्य—वह भड़क उठी। उसे इस बातमें भगवती पार्वतीकी अवमाननाका आभास हुआ होगा। उसने शाप दे दिया; किन्तु वह शाप तो परिहास जैसा है।' स्वर्णाको शाप महत्त्वहीन लगता था।

'क्या शाप दिया ?' भद्रने पत्नीसे सीधे पूछा।

'तुम्हें अपने पातिव्रतका बड़ा गर्व है ? मर्त्यधराको धन्य करो। अन्तमें भी अन्यसे दो सन्तान उत्पन्न करके तब स्वामीको प्राप्त करना और वह भी अल्प सन्निधि उनकी।'

'मैंने बाधा दी।' स्वर्णाने कहा—'मुझपर भी बरस पड़ी और बहिन कनकापर, शुभ्रापर भी।'

'तुम्हें भी शाप मिला ?' भद्र अब गम्भीर हो गया। हेमा तो तनिक चिड़चिड़ी है; किन्तु कोई स्वर्णा जैसी सौम्या, सदयाको भी शाप दे सकती है ?

'तू भी दूसरेके पास जाकर रह। उसीकी सन्तानका पालन कर। स्वामीको पाकर भी दूसरेकी बनकर रह।' स्वर्णाने शाप सुना दिया; किन्तु उसके मुखपर कोई विषाद नहीं आया।

'बहिन कनकाने रोकना चाहा' स्वर्णाने कहा—'उसे भी कह दिया कि 'तू भी दूसरेकी बनकर तब अपने स्वामीको पावेगी और शुभ्राको भी। उसने तो हाथ हिला दिया—'तुम सब !'

'क्या तात्पर्य ?' भद्रका स्वर यह 'तुम सब' सुनकर उग्र हो उठा ।

'तुम क्यों रुष्ट होते हो ?' स्वर्णा बहुत सहज स्वरमें बोली—'उसका संकेत केवल हम चारके लिए था या पीछे खड़ी हिरण्या और काञ्चनाके लिए भी, यह स्पष्ट नहीं हुआ ।'

'ताम्रा और खर्वाके लिए ?' भद्र सौम्य हो गया । उसने समझ लिया कि शाप केवल उसीकी पत्नियोंको दिया गया है । श्रीराधा और उनकी सखियोंको शापकी आशंकासे वह उग्र हो उठा था ।

'वे दोनों तो साथ थीं ही नहीं ।' स्वर्णाने बतलाया—'वे शिवलोक नहीं गयी थीं; किन्तु बेचारी सुवर्चलापर अब तुमको कृपा करनी है ।'

'जीजी ! तुम अद्भुत हो । तुम इस शापको भी परिहास कहती हो ?' विशाखाका आश्चर्य अब तक मिटा नहीं था ।

'देवरके और इनके भी अनन्त रूप हैं ।' स्वर्णाने सस्मित कहा—'ये और चार-छः रूप बना लेंगे तो कुछ नहीं बिगड़ेगा इनका ।'

'मैं भी प्रशप्त हूँ देवि !' अब भद्र हँस पड़ा—'लेकिन देखती ही हो कि शापका कोई छींटा मेरे अंगमें कहीं नहीं लगा है । तुमको भी शापने कहीं स्पर्श किया दीखता नहीं । कोई शीघ्रता नहीं शापको अभी स्वीकृति देनेकी ।'

'तुमको किसने शाप दिया ?' सुबलके नेत्र अरुण हो उठे ।

'तुम क्यों रुष्ट होते हो ?' भद्रने सखाके कन्धेपर स्नेहपूर्वक कर रखा—'एक मुनि महाराज थे । लेकिन कन्हाई ही उनपर रुष्ट हुआ बैठा है । उन्होंने भी परिहास ही किया है । केवल ऐन्द्रियक जीवन प्राप्त करनेको कहा ।'

'अच्छा हुआ ।' स्वर्णा अब सुप्रसन्न बोली—'तुम हम चारों बहिनोंको समेट लाना ।'

'लेकिन लली क्यों मार्गमें यहाँ बैठी है ?' भद्रने पूछा ।

'अब अपनी ललीको तुम स्वयं समझाओ कि यह सब परिहास है ।' स्वर्णाने कहा—'वे आज मेरी भी सुनती नहीं हैं । बार-बार मेरे पैरपर मस्तक पटकती हैं । मुझसे उनका यह भाव सहा नहीं जाता । उन्हें पता नहीं क्यों लगता है कि सबका सब अपराध उन्हींका है और कोई बहुत

बड़ा अनर्थ हो गया है। वे तो अब देवरके सम्मुख जाने योग्य ही अपनेको नहीं मानती हैं।'

'सुबल ! बहुत भोली है तुम्हारी बहिन।' भद्रने सखाको समझाना चाहा—'तुम उसे समझालो। कहीं कोई अपराध नहीं हुआ। केवल उन मुनि महाराजकी चिन्ता थी मुझे और अब देखता हूँ कि सुवर्चलाको भी मुझे ही सम्हालना पड़ेगा।'

'सच, सम्हाल लेना उस बेचारीको।' स्वर्णा अत्यन्त दया एवं आग्रहपूर्वक बोली—'वह कहींकी नहीं रही। हम तो तुम्हारी हैं। भगवती महामाया हमारी सदा रक्षिका रहेंगी। किसीका कोई शाप हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता; किन्तु भगवती कात्यायनीको क्रुद्ध कर दिया उसने हम सबको शाप देकर। देवर या श्रीकीर्तिकुमारी उसकी कोई पुकार नहीं सुनेंगी। अब केवल तुम उसको यहाँ ला सकते हो।'

'तुम लाना चाहती हो, अतः उसे लाना तो पड़ेगा ही।' भद्रने आश्वासन दे दिया—'उसे लली स्वीकार भी कर लेंगी। केवल अब मर्त्यधराके कालका प्रश्न है।'

'जीजी !' अचानक विशाखा गिर पड़ी स्वर्णाके चरणोंपर—'इस अधमापर भी कृपा करो ! इतनी क्षमा, इतनी करुणा स्वामिनीके अतिरिक्त तुम्हीं कर सकती हो।'

'तुझे क्या हो गया है ?' स्वर्णाने झुककर उठाना चाहा विशाखाको; किन्तु वह पैर पकड़े झुकी रही।

'मैं तुम्हारे ये चरण तब तक नहीं छोड़ूंगी जब तक मुझे क्षमा करके आशीर्वाद नहीं दे दोगी।' विशाखा हिचकियाँ ले रही थी।

'अच्छा, तुझे क्षमा किया। बिना किसी अपराधके क्षमा किया।' स्वर्णाने हँसते हुए उसके सिरपर हाथ रखा—'आशीर्वाद देती हूँ कि देवर तुझे बहुत-बहुत प्यार करें।'

'हँसी मत करो जीजी !' विशाखा अत्यन्त कातर स्वरमें बोली—'आशीर्वाद दो कि स्वामिनी अपनी सेवामें इसे लिये रहें।'

'तू कीर्तिनन्दिनीकी सदा अनुग्रह-भाजना बनी रह !' स्वर्णाने स्वस्थ स्वरमें सचमुच आशीर्वाद दे दिया।

'आज कृतार्थ कर दिया तुमने जीजी।' विशाखाने आञ्चल करोंमें लेकर फिर स्वर्णाके पदोंपर सिर रखा और उठकर खड़ी हो गयी। 'मैं आश्वस्त हो गयी। अब स्वामिनीके समीप मेरे अपराधकी बात सोचना भी अपराध हो गया।

'चलो, एकको तो तुमने आश्वस्त कर दिया।' भद्रने पत्नीकी ओर देखा।

'लेकिन अपनी ललीको तुम्हीं आश्वस्त कर सकते हो।' स्वर्णा हँसकर बोली—'वे इस समय देवरकी भी सुनने वाली नहीं हैं।'

'भाभी ठीक कहती हैं दादा!' सुबल बोला—'बहिनको मैं नहीं समझा सकता; किन्तु तेरी बात वह टाल सकती ही नहीं।'

'मुझे ही चलना पड़ेगा!' भद्र श्रीराधाके समीप कम ही जाना चाहता है; किन्तु आज तो विवशता है।

शाप-सुधार—

'आपकी लली आपसे अनुरोध करती है' भद्रको बहुत अटपटा लगता है, बहुत अखरता है कि वह पहुँचे तो श्रीवृषभानु-नन्दिनी भूमिमें मस्तक रखकर उसे प्रणाम करती हैं और संकोचसे सिकुड़ जाती है। कुछ कहना ही हो तो उनकी ओरसे ललिताको ही कहना पड़ता है। आज भी ललिता ही बोली—'आप क्षमा कर दीजिये और कोई नाम मत लीजिये। उस अपराधिनीका नाम सुनना भी इन्हें सह्य नहीं है।'

'कनूँ भी यही कहता था।' भद्र गम्भीर हो गया। अन्ततः कन्हाई और श्रीराधा दो तो नहीं हैं कि इनके स्वभाव दो होंगे। 'लेकिन क्षमा माँगकर लली मुझे पराया बतावें, यह उचित नहीं है। एक साधारण परिहासमें क्षमाका प्रयोजन? मैं अभी शापमें सुधार करती हूँ। लली उसको स्वीकृति देंगी। मैं किसीको यहाँ तुम्हारे समुदायमें भेजूँ तो मुझपर तो तुम सब प्रतिबन्ध नहीं लगाओगी?'

'अब अत्याचार तो मत करो।' श्री राधाने पुनः भूमिपर मस्तक रखा तो ललिताने हाथ जोड़े—'तुमपर प्रतिबन्ध लगानेका साहस जो करेगी, उसे भगवती योगमाया क्षमा करेंगी?'

'तब तुम सब यहाँ क्यों बैठी हो?' भद्रने आदेशके स्वरमें कहा—'उठो और अपने निकुञ्जको सुशोभित करो। कन्हाई अनन्त काल तक गोचारण करता रह सकता है; किन्तु बेचारी बालिकाएँ कब तक इस प्रकार मार्गमें निर्वासिता-प्राय रहेंगी।'

'आपकी ये लली साहस नहीं कर पाती हैं आपके अनुजके सम्मुख जानेका।' ललिताने बहुत विनम्र बनकर विनय की—'वे इस समय किसीको भी कुछ कह दे सकते हैं। न भी कहें तो जीजी स्वर्णा और उनकी बहिनें यहाँ न हों तो आपकी लली निकुञ्जमें प्रवेश कर पावेंगी? विशाखाके बिना क्या निकुञ्ज शोभा पावेगा?'

'विशाखाको तो स्वर्णाने आशीर्वाद दे दिया है कि वह अपनी स्वामिनीकी सदा अनुग्रह-भाजना बनी रहे।' भद्रका वाक्य पूरा होते ही श्रीकीर्तिकुमारी अचानक उठीं और स्वर्णाके पदोंपर मस्तक रखकर उसके दोंनों चरण उन्होंने भुजाओंमें बाँध लिये।

'देवर तुमसे अनन्त प्यार करें।' स्वर्णाने उनके सिरपर भी हाथ रखकर आशीर्वाद दे दिया और बलपूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लिया।

'कोई कहीं जा नहीं रही है।' भद्रने लौटते-लौटते कहा—'मेरा आदेश तुममें कोई नहीं टालेगा। अभी इसी क्षण यहाँसे चल दो और अपने धाम पहुँचो। कन्हाई कुछ न सोचेगा, न करेगा।'

'आदेश तो अनुल्लंघनीय है।' श्रीकीर्तिकुमारी मन्द पदोंसे चल पड़ीं, तब ललिताने ही कहा—'लेकिन कोई कहीं नहीं जायँगी उस शापके रहते? आप उसे निरस्त कर रहे हैं?'

'गोलोक पहुँचनेका जिसे अधिकार किसी प्रकार मिल गया, उसका शाप निरस्त कर दिया जाय तो लोककी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी। शाप गोलोकसे बाहर दिया गया, इसका तो महत्त्व नहीं है। लेकिन भद्र यदि शापको निरस्त करता है तो बाधा डालनेकी शक्ति भी तो किसीमें कहीं नहीं है।

'मैं उसमें संशोधन करता हूँ।' भद्रने गम्भीर स्वरमें कहा—'लली उसको स्वीकृति देगी।'

'आपकी आज्ञानुवर्तिनी हैं आपकी लली।' ललिता प्रसन्न हो गयी—'स्वीकृति तो उसे तभी भगवती योगमाया दे चुकीं जब आपने संकल्प किया। हम तो सुन लेनेको समुत्सुक हैं।

'समस्त सृष्टि यहाँकी प्रतिबिम्ब भूता ही तो है।' भद्रने स्पष्ट किया—'एक-एक और प्रतिबिम्ब पड़ जायँगे मर्त्यधरापर शापको सार्थक करनेके लिए। यहाँसे कोई नहीं जायगी।'

श्रीराधा पुनः स्वर्णके चरणोंमें पड़ गयी होतीं, यदि उसने उनको अंकमें न समेट लिया होता।

'लेकिन शुभ्रा जीजी?' ललिताने पुनः शंका की—'उस अमंगलाने कह दिया था कि ये यहाँ फिर नहीं आ सकेंगी।'

'यहाँसे बाहर कहीं कुछ है? असम्भव शापकी सार्थकता कभी हुई है?' भद्र हँस पड़ा—'अवश्य शुभ्रा अब इस रूपमें तुम्हें यहाँ नहीं मिलेगी; किन्तु वह साकेतमें वहाँकी अधीश्वरी अम्बाकी पुत्रवधू बनकर रहे, इसमें तो कोई बाधा नहीं है।'

'तुम यहाँ नहीं रहोगे तो तुम्हारे अनुज सुप्रसन्न रह सकेंगे?' ललिताको यह शाप-सुधार प्रिय नहीं लगा था।

'मैं कहाँ जा रहा हूँ।' भद्रने हँसकर कह दिया—'एक रूपसे मैं साकेतमें अम्बाका स्नेह प्राप्त करता रहूँ, इसमें तुझे क्यों ईर्ष्या होती है? एक रूपसे मुझे मर्त्यधरापर भी जाना है।'

'तुम्हें जाना है मर्त्यधरापर ?' ललिता चौंकी।

'एक मुनि महाराज मुझे ये आशीर्वाद दे गये हैं।' भद्रने कहा—'अब कन्हाई उनकी चर्चा ही सुननेको प्रस्तुत नहीं। अन्ततः उनको अनन्तकाल तक पाषाण ही तो नहीं रहने दिया जा सकता। यहाँ ललीको भी एककी चर्चा सुननी स्वीकार नहीं। जो एक बार कैसे भी इनके चरणों तक पहुँच गयी, उसे भटकने तो नहीं ही दिया जा सकता। मेरी इन सहधर्मिणियोंके जो प्रतिबिम्ब वहाँ प्रकट होंगे, उनके समेटनेका कार्य कौन करेगा ?'

'इस बार अवतार लेकर तुम धराको धन्य करोगे ?' ललिता खड़ी रह गयी।

'यह सनक मुझे नहीं है।' भद्र खुलकर हँस पड़ा। 'यह सब करना होगा तो दाऊ दादा कभी जायगा या कन्हाई करेगा। मैं तो केवल अपनोंको समेटूँगा और धूम करूँगा। समस्याएँ उत्पन्न करता रहूँगा। उन्हें कन्हाईको सुलझाते रहना पड़ेगा।'

'तुम जाओगे तो तुम्हारे अनुज यहाँ नहीं रहेंगे।' ललिता भाव-विह्वल बोल पड़ी—'तब तुम्हारी लली यहाँ रहेंगी ? हम सब यहाँ रहकर क्या सिर धुनेंगी ?'

'कह तो दिया कि कोई कहीं नहीं जा रहा है।' भद्रने झिड़की दी—'लड़कियोंको तो रोने-मचलनेका कोई बहाना चाहिये। अनन्त कालसे प्रतिबिम्ब ही सृष्टिकी प्रतीति करा रहे हैं। एक और प्रतिबिम्ब वहाँ प्रकट हो जायगा और कन्हाईको तो वहाँ जाना नहीं है। कभी कदाचित उससे न रहा जाय तो अल्प क्षणको प्रकट होलेगा; क्योंकि उसका प्रतिबिम्ब भी सच्चिदानन्द ही होता है।'

'तुम सब अब शीघ्रता करो ! अपने सदन पहुँचो।' भद्रने चौंककर कहा—'लगता है भगवान् आशुतोष पधार रहे हैं। उनके वृषभके कण्ठके घण्टेका प्रणवनाद गूंजने लगा है।'

'तुम्हारे अनुज भी आ ही रहे होंगे।' ललिताने प्रणाम करनेके निमित्त अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया।

इन भाव लोकोंमें आना-जाना तो केवल शब्द व्यवहार है। सब दिव्यलोक समस्त दिक्में सर्वव्यापक हैं। आविर्भाव-तिरोभाव ही होता है वहाँ। वृषभारूढ़ भगवान् धूर्जटिको प्रकट ही होना था। ●

पुनः शाप—

'अच्छा, तुम मेरे पेटका परिहास करते हो मनुष्योंके समान !' भगवान् शिवके साथ नन्दीश्वरके अतिरिक्त केवल एक गण आया था। कोई कूष्माण्ड था। नन्दीश्वरने गणोंको निषेध कर दिया था। गोलोकमें भला भूत-प्रेत प्रवेश कर सकते हैं; किन्तु यह एक पीछे लगा लुढ़कता चला आया था। बहुत उत्कण्ठा थी इसे गोलोक देखनेकी। शिवलोक भी अभी शीघ्र ही मिला था इसे। महाभैरवका ही सेवक था। नन्दीश्वरके निषेधको महत्वपूर्ण नहीं माना इसने।

भगवान् विश्वनाथका महावृषभ गोलोकके सम्मुख रुका तो उत्साहमें यह कूष्माण्ड पीछेसे आगे लुढ़क आया। कोई बहुत बड़े गजके बराबर कद्दू लुढ़कता चले तो आपको कैसा लगेगा। बाबाके गणोंमें भूत, प्रेत, पिशाचोंके ही वर्गमें कूष्माण्ड होते हैं। इनकी आकृति कद्दूके समान। सिर, हाथ, पैर होते तो हैं; किन्तु ऐसे कि ध्यानसे देखनेपर ही दीखें। शरीरमें केवल तोंद और ये गोल-मटोल लुढ़कते ही चलते हैं। अवश्य ये मानसिक सृष्टिके हैं। भूतनी, चुड़ैल (प्रेतनी), पिशाचिनी, यक्षिणी तो होती हैं; किन्तु कूष्माण्ड वर्गमें नारी नहीं। ये आजीवन ब्रह्मचारी बहुत क्रोधी होते हैं। या तो किसीका अनिष्ट करेंगे ही नहीं, अथवा उसका समूल वंश नाश कर देंगे।

कूष्माण्ड स्वभावसे कुतूहली होते हैं। कहीं अचानक प्रकट होकर लोगोंको अकारण डरा देना और लुढ़कते चले जाना इन्हें प्रिय है।

यह कूष्माण्ड पीछेसे लुढ़कता महावृषभके आगे बढ़ता ही जा रहा था। नन्दी इसे वारित करते, इससे पूर्व ही भद्र दौड़ता आया। यह बहुत भारी लुढ़कता कद्दू इसे विचित्र लगा। अपने दाहिने हाथकी चारों अंगुलियाँ इसके गोल शरीरमें चुभाकर हंस पड़ा।

'तुमने मेरे पेटमें चार अंगुलियाँ चुभायी हैं, अतः चार युग—पूरे मन्वन्तर पर्यन्त मर्त्यधरापर रहो !' कूष्माण्डने शाप दिया।

'चल गिर नीचे !' नन्दीश्वरके नेत्र अरुण हो गये। उन्होंने हाथका संकेत किया और कूष्माण्ड ऐसे अदृश्य हो गया, जैसे वहाँ कभी था ही नहीं।

'आप मुझे क्षमा करें।' नन्दीश्वर भद्रके सम्मुख हाथ जोड़कर कुछ कहते; किन्तु कन्हाईके चपल सखा इसका कहाँ किसीको अवसर देते हैं। भद्र तब तक तो भगवान् चन्द्रमौलिके श्रीचरणों तक पहुँच चुका था।

'तुम आ गये !' भगवान गङ्गाधर अपने महावृषभसे लगभग कूद पड़े थे। चरणोंमें प्रणत होते भद्रको चारों भुजाओंसे समेटकर उन्होंने अंकमें ही उठा लिया।

'बाबा !' भद्रने उन नीलकण्ठके श्रीमुखकी ओर देखते केवल इतना कहा और उनके कण्ठमें भुजाएँ डाल दीं।

जो मृत्युञ्जयके अङ्कमें पहुँच गया, उसको उनके आभरण बने कालभुजंगका भला भय क्या। अब तो बाबाके कण्ठ, भुजा आदिके आभूषण बने सर्प उसे केवल स्नेहसे सहला सकते हैं। यह गोलोक-बिहारीके सखाका स्पर्श ऐसा उपेक्षणीय तो नहीं कि कोई इस सौभाग्यका अवसर चूक जाय। अतः मस्तककी जटाओंमें लिपटा नाग भी नीचे सरककर सिर बढ़ाकर भद्रकी अलकें सहलाने लगा है।

'आप यहीं रुक गये !' कन्हाई दौड़ा आया। सहस्र-सहस्र बालक दौड़े आये। भगवान् विश्वनाथके श्रीचरणोंमें अलौकिक पुष्पोंकी अञ्जलि अर्पित करके सबने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। उठकर श्यामसुन्दरने प्रार्थना की—'पधारें और हमें अर्चाका सौभाग्य प्रदान करें।'

'तुम मुझे क्षमा करदो !' अब कहीं वे नीलकण्ठ प्रभु बोल सके। इनका रोम-रोम उत्थित, नयनों-से अश्रुधारा चलती और सम्पूर्ण गात्र कम्पायमान। भद्रको अङ्कमें ही लिये अब तक स्तब्ध खड़े रह गये थे। अब भी स्वर गद्गद था—'तुम्हारे सखाको एक अज्ञ गणने शाप दे दिया।'

'मुझे तो ईर्ष्या हो रही है इसके सौभाग्यपर !' कन्हाई भी भद्रको ही देख रहा था—'यह हम सबका यूथनायक तो था ही, अब आपके अङ्कका अधिकारी हो गया। अम्बा आद्या इसे पहिले ही अपना पुत्र मानती हैं और साकेतका भी यह युवराज बन गया है।'

'बाबा ! यहाँ कोई किसीको शाप तो दे ही नहीं सकता।' भद्र अब धीरेसे अङ्कसे उतरा और भगवान् आशुतोषका दक्षिण कर पकड़कर उनके श्रीअंगसे सटकर खड़ा हो गया था। जैसे बाबापर कन्हाईसे अधिक स्वत्व है उसका—'यहाँ कोई शाप देनेका मन भी करता है तो अम्बा आद्या उसकी वाणीको वरदान बना देती हैं।'

'तुम उचित कहते हो !' भगवान् भोलेनाथ अत्यन्त गम्भीर हो गये। उन्होंने दक्षिण भुजा उठाकर घोषणा की—'मैं मर्यादा बनाता हूँ कि इन दिव्यलोकोंमें कोई किसीको शाप नहीं दे सकेगा और देगा तो उसे स्वयं भोगना होगा।'

'शाप देनेवाला तो अब भी भाग्यहीन ही बना।' भद्र बहुत नम्रतासे बोला—'बाबा ! उस अभागे गणको ··· ।'

'वत्स ! मेरा एक अनुरोध मानलो।' भद्रको रोककर बीचमें ही भगवान् डमरूपाणि बोले—'उसकी चर्चा भी मुझे अत्यन्त अप्रिय है। उसका स्मरण न तुम करो और न मुझे कराओ।'

'आप भी कन्हाई जैसे ही हैं बाबा !' भद्र भरित कण्ठ बोला—'आप आज्ञा दे सकते हैं। अनुरोध तो मैं करता हूँ कि अनन्त करुणा-वरुणालय प्रभु मुझे तो किसीपर कृपा करनेको स्वतन्त्र रहने दें और यदि मैं किसीको इन चारु चरणोंमें भेजना चाहूँ तो···· ···।'

'वह सदा मेरा प्रिय रहेगा।' भगवान् विश्वनाथने भद्रको फिर अङ्कमें उठा लिया--'तुम जिसे मेरे यहाँ, गोलोक या साकेत भेजनेकी इच्छा भी करोगे, उसके स्वागतको हम तीनों समुत्सुक बने रहेंगे। मेरे यहाँ नन्दीश्वर भी उसका शासन नहीं कर सकेंगे।'

'आपकी आज्ञा मेरे लिए तो सदा अनुल्लंघनीय है।' कन्हाईने अञ्जलि बाँध ली; क्योंकि भगवान् वृषभध्वजकी दृष्टि कहती थी कि वे अपने आशीर्वादका व्रजराज कुमारसे अनुमोदन चाहते हैं।

'तुम इन सब शापोंको अस्वीकार कर देनेमें समर्थ हो, स्वतन्त्र हो।' अब उन महेश्वरने भद्रकी ठुड्डीमें दक्षिण कर स्नेहपूर्वक लगाकर उसका मुख तनिक ऊपर उठाया और उसका सिर सूंघ लिया।

'मैं आपका स्नेह भाजन, आपका—आप अमृत स्वरूपका पुत्र' भद्रने सहास्य कहा—'कोई शाप मेरा क्या बिगाड़ेगा। महाकालके प्रिय पुत्रको प्रपीड़ित करना तो दूर, उसे खिझानेका साहस किसीमें आ कैसे सकता है। ये शाप तो मेरा—मेरे एक प्रतिबिम्बका विनोद बनेंगे।'

'तुम अपने इन नीलसुन्दर सखासे अभिन्न हो, अतः इनके समान ही तुम्हारी करुणा भी असीम अतर्क्य है।' भगवान् धूर्जटिका स्वर आर्द्र हो उठा—'अब तुम्हें अपना ही अहित करने वालोंके उद्धारकी चिन्ता हो उठी

है। इसे मैं भी कैसे वारित कर सकता हूँ। तुम्हारी कृपाके अतिरिक्त तो अब उनका कहीं कोई आश्रय रहा नहीं।'

'लेकिन बाबा ! लोकालयमें भी तुम कन्हाईके समान ही मेरे अपने रहोगे। मुझे अपना करावलम्बन देते रहोगे।' अब भद्रने अंकसे उतरकर अञ्जलियाँ बाँधी—'मैं जब पुकारूँगा, तुम समाधिमें नहीं बैठे रहोगे।'

'एवमस्तु !' चन्द्रमौलि प्रभुसे दूसरा कुछ सुननेकी तो आशा कभी कोई करता नहीं। उनका स्वभाव है कि उनसे कुछ कहा जाय तो उनके श्रीमुखसे स्वतः 'एवमस्तु' निकल पड़ता है। लेकिन उन्होंने भद्रका पुनः हाथ पकड़ा—'तुम्हें यह कहनेकी आवश्यकता थी ? शिव तमोगुणका अधिष्ठाता सही; किन्तु ऐसी जड़ समाधि तो कभी नहीं लगाता जो तुम्हारी पुकारसे भी भग्न न होती हो।'

'बाबा ! आप तो यहीं खड़े रह गये।' कन्हाईने उलाहना दिया—'हम सभी अर्चा करनेको उत्सुक हैं।'

'उचित तो यह था कि मुझे तुम्हारे इस दिव्यधाममें प्रवेशका अनधिकारी मान लिया जाता।' भगवान् कृत्तिवासका कण्ठ फिर भर आया—'तुम्हारे जनोंका अपराध करके यह प्रलङ्कर भी सकुशल नहीं रहता—यह मर्यादा स्थापित होनी चाहिये थी; किन्तु तुम और तुम्हारे सखा कृपाके ही घनीभाव हैं। तुम्हारी इच्छाकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।'

'शिवहर शंकर गौरीशं,
वन्दे गङ्गाधरमीशम्।
रुद्रं पशुपतिमीशानं
कलये काशीपुरिनाथम्॥

भगवान् वृषभध्वज तो आगे पैदल ही जाना चाहते थे; किन्तु श्यामने उन्हें वृषभारूढ़ होनेको बाध्य कर दिया। नन्दीश्वर जब द्वारपर ठिठकने लगे, कन्हाईने उनको भी आगे बढ़नेको बाध्य किया—'आप अपनी अर्चासे हमें क्यों वञ्चित करना चाहते हैं ? जानते तो हैं कि महेश्वरके सेवक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मैं उनका भी अर्चक ही हूँ।'
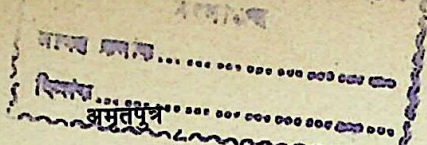
'आप और ये मेरे प्रभु दो नहीं हैं, दया करके मेरी यह बुद्धि सदा बनी रहने दीजिये।' नन्दीश्वरने दोनों हाथ जोड़े—'अन्यथा आपकी माया भगवतीकी महिमाका पार नहीं है। आप अत्यन्त लीला-निपुण और आपकी माया अगम्य। अतः मुझपर अनुग्रह करें। प्रणतपाल ! मैं आपकी शरण हूँ, पाहि !'

'एवमस्तु !' कन्हाईने भगवान् शकरके समान ही गम्भीरतासे कहा तो सब सखा तालो बजाकर हँस पड़े।

'मैं तुमसे बड़ा हो गया !' भद्रने धीरेसे कन्हाईका हाथ दबाया—'अब तो मानेगा ?'

'दादा ! तू बड़ा तो सदासे है।' भगवान् शशाङ्क-शेखरकी सन्निधिमें श्यामसुन्दर इस समय गम्भीर बन गया है—'मैया कहती है कि तू मुझसे दस महीने बड़ा है और साकेतके युवराज एवं साम्बशिवके मुँह बोले कुमारको छोटा कहनेकी धृष्टता भला मैं कैसे करूँगा।'

'अब तुम अपने लोकमें मेरे गणको भी ले आये।' भगवान् शिवको नन्दीश्वरको भी साथ ले आना अच्छा नहीं लगा था।

'हम सब भी तो आपके ही गण हैं।' कन्हाईने अञ्जलि बाँधी—'अपनोंमें-से ही एक अग्रणीका सत्कार करनेका अवसर तो आज मिलेगा मुझे।'

नन्दीश्वर भाव-विह्वल हो रहे थे और भगवान् शिव भी मौन रह गये। उन्होंने देखा कि वे कुछ कहेंगे तो ये मयूर-मुकुटी ऐसी ही अटपटी बातें करते रहेंगे।
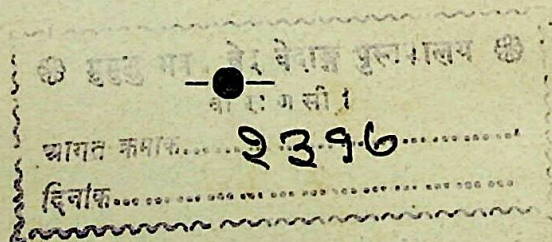
शापोंका विवेचन—

'अन्ततः ये शाप होते ही क्यों हैं ?' भद्रका प्रश्न उचित नहीं है, ऐसा कोई कह नहीं सकता। गोलोक, साकेतादिमें सर्वथा निर्मुक्त कल्मष, अहंकारहीन प्राणी पहुँचता है। प्राकृत अन्तःकरण भी उसमें नहीं होता। उसका शरीर, मन, बुद्धि सबका सब तो प्राकृत जगतमें छूट चुका। वह दिव्य देह प्राप्त करके ही आनेमें समर्थ हुआ। अब उसमें अपना तो कुछ रहा नहीं। तब उसमें पूर्व-संस्कार, पूर्वाभ्यासका प्रसंग कैसा ? तब उसमें अभिमान, रोष क्यों आता है ? वह क्यों शाप देता है ?

भद्रने नहीं पूछा; किन्तु प्रश्न तो है ही कि माया-मण्डलसे सर्वथा परे इन दिव्य भगवद्धामोंमें पहुँचकर किसीका भी पतन क्यों ? यहाँसे भी यदि कोई जन्म-मरणके चक्रमें लौटता है तो भक्तिका, इन दिव्यधामोंका ही क्या प्रभाव ? ये भी ब्रह्मलोकके समान पुनरावर्ती ही हुए। सब न सही, कोई तो यहाँसे भी लौटता ही है। ब्रह्मलोकसे भी सब तो नहीं लौटते। बहुत-से निर्मुक्त-कल्मष वहाँसे भी ब्रह्माके साथ निर्वाण पद प्राप्त ही-कर लेते हैं।

भगवान् नीलकण्ठकी अर्चा हो चुकी थी। गोपबालक श्रीकृष्ण-चन्द्रके साथ उन आशुतोषके समीप आज सहज चापल्य त्यागकर शान्त बैठे थे। भद्रको तो उन त्रिलोचनने अंकमें ही बैठा लिया था।

भद्रने ही प्रश्न किया। उसे यही समझमें नहीं आता कि भगवती योगमाया इन धामोंमें शाप देनेका सुयोग ही किसीको क्यों देती हैं। शाप असम्भव बना दिया जाना चाहिये यहाँ।

'तुम्हारे ये अनुज बहुत चपल हैं।' कन्हाईकी ओर भगवान् शंकरने संकेत किया तो सब बालक इसे देखकर मुस्कराये। श्यामने सिर झुका लिया। अब इन महेश्वरके सम्मुख प्रतिवाद तो किया नहीं जा सकता। सदाशिवने कहा—'इनसे शान्त तो बैठा नहीं जाता। यह तो मेरे संकोचसे इस समय ऐसे बैठे हैं। इन्हें लीला करनो होती है तो भगवती योगमाया अशक्यको भी शक्य बना देती हैं।'

'भगवती योगमाया अघटन घटना पटीयसी हैं, यह सब जानते हैं। कन्हाई बहुत नटखट है, ऊधमी है, यह भी सबको पता है ?'

'यह इसीका उत्पात होता है ?' भद्रने श्यामकी ओर देखा और हँस पड़ा। इस सुकुमारको उलाहना नहीं दिया जा सकता।

'तुम जानते हो कि मायाके क्षेत्रमें जो अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, उनमें तुम्हारे लोकके ही प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। माया और मायाकी विकृति अहंकारादिके कारण उन प्रतिबिम्बोंमें अपना पृथक् अस्तित्व-बोध, कर्तृत्वाभिमान आता है। तब कर्मचक्र चल पड़ता है।' भगवान् भूतनाथने समझाया—'किन्तु कर्मचक्र तो है ही दुःखनिलय। उसमें पड़ा प्राणी इन आनन्दघनसे विमुख होकर अतिशय कातर हो जाता है। तब इन लीलामयको उसपर दया आती है। उसके उद्धारके लिए ये कोई-न-कोई बहाना बनाते हैं।'

'ओह ! तो अपना यह कन्हाई नटखटपन भी जीवोंपर अतिशय दया करके ही दिखलाता है।' भद्रने बड़े स्नेह, अपनत्वसे अनुजकी ओर देखा। उसे भगवान् शिवने दो भुजाओंसे पकड़ न रखा होता तो कूदकर अपने कनूँको हृदयसे लगा लेता।

'तुम्हारा यह लोक तो आनन्दका घनीभाव है।' ज्ञानियोंके परमगुरु प्रभु समझा रहे थे—'यहाँ ज्ञानको भगवती योगमाया प्रसुप्त रखती हैं। ऐसा न हो तो लीला ही नहीं चले। इन सगुण-साकार लोकोंमें और इनसे परे भी एक अखण्ड, अद्वितीय सत्ता है, वह ज्ञान है। निर्विकार, निर्विशेष ज्ञान। उस ब्रह्मके ही ये घनीभाव श्यामसुन्दर और इनसे अभिन्न तुम सब।'

सबको ही यह स्तवन जैसा लगा। भद्रने कह दिया—'बाबा, आप तो अपनी बात हम सबका और कन्हाईका नाम लेकर करने लगे।'

'तुम्हारे लोकसे बाहर, मायाकी एक पाद विभूतिमें जो अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, वे प्रतिबिम्ब हैं इन दिव्य लोकोंके। स्वप्नके समान वे लोक।' भगवान् भवानीनाथकी बात आगे बढ़ी—'उनमें तुम्हारा आनन्द सत्वगुण बन जाता है। ज्ञान वहाँ रजोगुण होकर क्रियाशील रहता है और सत्ता वहाँ तमोगुण होकर सघन हो जाती है, स्थूलता प्राप्त कर लेती है।'

'आप तो शापको समझा रहे थे।' भद्रको यह गम्भीर चर्चा बहुत आकर्षक नहीं लगी।

Licensed to post without Pre-payment. Mathura-1 Licence No. MTR-5
भारतीय डाक-तार विभागकी पंजीयन संख्या—एम० टी० आर०-८५

काम और क्रोध समष्टिमें परिणाम उत्पन्न करते हैं, अतः उनका दायित्व सर्वथा व्यक्तिपर ही नहीं है। उनके मूलमें पर-प्रारब्ध अथवा समष्टि सञ्चालककी प्रेरणा भी सम्भव है, किन्तु लोभ, मोह परिणाम नहीं उत्पन्न करते अतः ये व्यक्तिके दोष हैं। इनका पूरा दायित्व व्यक्तिपर है।

*